

**THE BOOK WAS
DRENCHED**

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180377

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ¹⁴83.1

Acc.No. GH 638

C 43C

चगताई मिर्जा अजीमबेग

चगताई की कहानियाँ

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. ~~G. H. 638~~ H 83.1 Accession No. G. H 638

Author C 432
Title चरिताई मिर्जा अजीमबेग
चरिताई की कहानियाँ

This book should be returned on or before the date
last marked below.

की कहानियाँ

पहला भाग

[हास्यरस पूर्ण शिष्ट कहानियों का सुन्दर संकलन]

लेखक

स्वर्गीय मिर्ज़ा अज़ीमबेग चग़ताई

बी० ए०, एल-एल बी०



प्रकाशक

छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग

बार]

१९४४

[मूल्य १।)

प्रकाशक

श्री केदारनाथ गुप्त, एम० ए०

प्रोप्राइटर—छात्रहितकारी पुस्तकमाला

दारागंज, प्रयाग ।



मुद्रक

सरयू प्रसाद पांडेय 'विशारद'

नागरी प्रेस, दारागंज, '

प्रयाग ।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
१—गहरी दोस्ती	१
२—एक्का	१४
३—चिल्लाकशी	३३
४—खामोशी का मतलब	४९
५—परीक्षक का पान	६५
६—अलशजरी	७८
७—फकीर	१०२
८—क्रिकेट मैच	११०
९—वकालत	१२४



चगताई की कहानियाँ

पहला भाग



गहरी दोस्ती

एक बड़े ज़रूरी काम से मैं लखनऊ जा रहा था। एक दिन लखनऊ ठहरना था। टूण्डले के स्टेशन पर आना असबाब कानपुर वाली गाड़ी में रखकर स्टेशन पर टहलने लगा, क्योंकि गाड़ी छूटने में काफी देर थी। टहलते-टहलते रिफ्रेशमेंट-रूम (भोजनालय) को सूँघने लगा। जाली से अन्दर झाँका, तो कुछ शक-सा हुआ। गौर से झाँककर देखा, भाई शज़री ! वल्लाह ! किस शान से पतलून की जेब में हाथ डाले खड़े थे। सामने मेज़ पर खाने के सामान से लबालब—नहीं, बल्कि लदालद—भरी हुई एक किशती (थाल) रखी थी, जिसमें चाय के अलावा केक, टोस्ट, चाकलेट, मक्खन दूध-फूस वगैरह-वगैरह, न-मालूम क्या-क्या अल्ल-गल्लम एक पर एक लदा हुआ था। भाई शज़री खाने को बैठना ही चाहते थे कि मज़हबी पाबन्दी या सफ़ाई का खयाल आ गया ! और लपककर बरामदेवाले नल पर पहुँचे। वे अभी हाथ-मुँह धो ही रहे थे कि मैं लपककर उनकी जगह.....भाई शज़री के आने की आइट पाकर मैंने गरदन और

भी नीची कर ली। मैंने केक खाना शुरू ही किया था और आनन-फानन में आधे तक पहुँच गया था। हालाँकि 'शार्ट-हैंड' तो मैंने सीखा नहीं, फिर भी खाने में मेरे हाथ सिंगर-मशीन की तरह चल रहे थे। भाई शज़री उधर अपनी भूख पर धार रखे हुए आये, और मुझे इस सेवा में व्यस्त देखकर बोल उठे—“अरे, तुम कहाँ ?”

मैं तेज़ी से मुँह चला रहा था। मेरे विचार से प्लेट में केक रखा रहने के बजाय, यह कहीं अच्छा था कि मेरे पेट में रहे। इसलिए उस समय मैं अपने गोल-गोल गालों के लिहाज़ से हज़रते डारविन के के सिद्धान्त की जीती जागती-तस्वीर बना बैठा था, लेहाज़ा बोलता क्या, झाक !

“कहाँ जा रहे हो ?”—कहकर भाई शज़री भी खाने पर तुल पड़े, क्योंकि यह मौका शील-संकोच का नहीं था। फिर इसके सिवा भाई शज़री वैसे भी एक कुलफ़ीवाले का मटका लूटने में कालेज में फ़र्स्ट प्राइज़ ले चुके थे। इस कुलफ़ीवाले ने शिकायत करने के लिए इधर-उधर भागने या गुल मचाने के बजाय कि हाय ! मुझे लड़कों ने लूट लिया, यह किया था कि खुद भी अपनी ही कुलफ़ियाँ लूट-लूट खाने लगा। वह जीता और लड़के हारे ! क्योंकि उसने अपने तेज और कैंचीनुमा हाथों से कुलफ़ियाँ खोल-खोलकर बड़ी सफ़ाई के साथ हथेलियों में बट-बटकर बर्फ़ खाना शुरू कर दिया था, ताकि जो कुछ भी अपने पेट में पहुँच जाय, वही बेहतर है ! हाँ, तो जब केक और अच्छी अच्छी मिठाइयाँ खत्म हो चुकीं, यानी खाने की धुड़दौर खत्म हुई, और थाल में सिर्फ़ रूखी-सूखी चीज़ें ही रह गईं, तब कहीं विचार परिवर्तन का मौका मिला। अब मुझे इतमीनान था और उन्हें भी !

“कहाँ जा रहे हो, यार ?”—उन्होंने पूछा।

“और तुम कहाँ जा रहे हो ?” मैंने जवाब दिया।

“पहले तुम बताओ ।” — भाई शज़री ने चाय की प्याली से खेलते हुए कहा ।

मैंने उनकी आँखों में आँखें डालकर सूखे मुँह से कहा — “ज़रा टूण्डले तक आया था ।”

“भूठे हो” — भाई शज़री ने चाय की प्याली को होठों पर से हटाते हुए कहा — “मैं खुद टूण्डले तक आया था ।” फिर अपना मुँह चाय की प्याली से ढँक लिया ।

हम दोनों भूठ बोले, क्यों ? महज़ इसलिए कि शायद दूसरा कहे कि मैं किराया दूँगा, मेरे साथ आगे चलो । फिर मज़ा यह कि दोनों को मालूम था कि भूठ बोला जा रहा है ।

“कहाँ बैठे हो ?” मैंने अचानक पूछा ।

“सेकेण्ड क्लास में ।” — सहसा भाई शज़री के मुँह से निकल ही तो गया, लेकिन फ़ौरन ही अपनी ग़लती मालूम करके उन्होंने उसी चाय की प्याली को जिससे वे अभी खेल रहे थे, मेरी तरफ़ भटककर कहा — “बेईमान कहीं का !”

यह कहकर भाई शज़री अपनी हिमाक़त पर हँसे ही थे कि इतने में ज़ोर से गाड़ी ने सीटी दे दी । इस कमबख़्त सीटी की आवाज़ कानों में पड़ते ही मानों हम दोनों एक दम से जाग उठे, ओर सरपर पाँव रख कर भागे; मगर भाई शज़री मय चाय के प्याले के, जिसका कुण्डा खेलते-खेलते उनकी उँगलियों में ही फँसा रह गया था । उधर होटलवाले ने देखा कि मुसाफ़िर प्याली उड़ाये लिए जाता है, तो वह अलग चिल्लाता हुआ लपका — “लेना-लेना ।”

एक ही साथ भाई शज़री के ज़िम्मे अब दो काम थे; एक तो अपनी उँगली से चाय की प्याली का फँसा हुआ कुण्डा निकालना, और दूसरे बेतहाशा सरपर पैर रखकर भागना, ताकि गाड़ी न छूट जाय । नतीजा इसका पाठक खुद अनुमान कर सकते हैं । इसके सिवा

और सम्भव ही क्या था कि किसी बिचित्र ढङ्ग से उँगली में चाय की प्याली का सिर्फ कुन्डा ही कुन्डा रह जाय ? चुनांचे हुआ भी यही । इसके पहले कि मैं यह बतलाऊँ कि यह किस तरह हुआ, यह ज़रूरी है कि पाठक को यह बतला दिया जाय कि न तो कोई रेलवे-रेगुलेशन ही ऐसा है कि दो बौखलाये हुए व्यक्ति एक ही वक्त में प्लैटफ़ॉर्म पर जमा न होने पायँ, और न फिर किसी कायदे या क़ानून के अनुसार यह हुक्म ही है कि प्लैटफ़ॉर्म पर कोई बदहवास खोंचा फाँदने की सफल या असफल चेष्टा न करे । फिर बदहवासी या बौखलाहट भी तो कोई जुर्म नहीं है । अतः इधर से भाई शज़री चले, और उधर से एक और साहब रेल छूटने की घबराहट में खोंचा फाँदकर ज़ोर-शोर से लपके । बदक्रिस्मती या खुश किस्मती से इन दोनों का रेलवे प्लैटफ़ॉर्म पर 'कोलीज़न' हुआ जैसे दो गाड़ियों का होता है, और वह भी इस तरह कि—मैं ठीक नहीं कह सकता कि—उन्होंने ताककर अपनी नाक भाई शज़री के हाथ में फँसी हुई प्याली पर मारी, या फिर भाई शज़री ने ही खुद उनको नाक पर वार किया । कुछ भी हो, दोनों गिरकर उठे । “अन्धा है बे !” भाई शज़री के मुँह से निकला । पलक मारते दोनों उठ कर सामने के इन्टर क्लास में चलती गाड़ी में लपककर घुस गये । यह कहने की ज़रूरत नहीं कि मैं इन दोनों सज्जनों से दो सेकेन्ड पहले ही पहुँच चुका था । मुझे देखकर ही भाई शज़री अपना सेकेण्ड क्लास छोड़कर जल्दी में इधर आ गये थे । हाँ, वे गाड़ी में बैठ तो गये, लेकिन बेचारा होटल का खानसामा, जो चाय की प्याली लिये दिये, उनके बेतहाशा भागने पर उनके पीछे दौड़ रहा था और जो उनके एक भलेमानुस से टक्कर लेने पर कुछ ठिठक-सा गया था, लपक कर गाड़ी की खिड़की से लटक गया । अभी तक भाई शज़री की बौखलाहट दूर न हुई थी कि यह नई आफ़त सर पर सवार हो गई । लगे पैतरे बदलने । कभी हाथ इस जेब में

जाता है, तो कभी उस जेब में। मगर निकलता है खाली ! उधर खानसामे की चिल्लपों “हज़रत, पैसे नहीं थे, तो डिशें क्यों उड़ाई ?” आखिर मामला बढ़ता देख मैंने एक रुपया निकाल कर प्लेटफार्म पर फेंक दिया। खानसामा चला गया।

(२)

अपना किस्सा आगे बयान करने के पहले यह ज़रूरी है कि ‘चाँटे’ या ‘थप्पड़’ के भेद और उनकी विशेषता के सम्बन्ध में कुछ विवेचना की जाय। पञ्जाब से दक्खिन तक अगर हाथ को किसी के गाल पर मारा जाय या गाल किसी के हाथ पर मारा जाय, तो कहा जाता है कि ‘चाँटा मारा’ या ‘चाँटा पड़ा’। ‘चाँटे’ का शब्द बहुत प्रचलित है। ‘थप्पड़’ भी प्रचलित है, लेकिन इन शब्दों के पर्यायवाची जितने भी शब्द यू० पी० या दूसरे प्रान्तों में बोले और इस्तेमाल किये जाते हैं, उनके ‘उच्चारण’ की साइकालोजी (मनोवृत्ति) पर गौर करने से पता चलता है कि चाँटे के अगणित भेद हो सकते हैं। लोगों ने आवाज़ के मुताबिक अलग-अलग नाम भी रख लिये हैं। ‘चाँटा’ वह है, जो गुस्से में किसी के गाल पर रसीद किया जाता है। इसके उच्चारण से ही इसकी ध्वनि-व्यञ्जना प्रकट हो जाती है। यानी यह ज़रूरी है कि चाँटा आवाज़ के साथ उतरे। इस आवाज़ में एक चटाखे की आवाज़ भी छिपी हुई है। ‘थप्पड़’ कभी चाँटे की बराबरी या चाँटे के सदृश अर्थवाची नहीं हो सकता, क्योंकि थप्पड़ से चटाखे की आवाज़—वह आवाज़ जिसका ताल्लुक सिर्फ़ उँगलियों से ही है—नहीं निकलती। थप्पड़ में अभागो गाल पर हाथ की उँगलियों के अलावा हथेली का भी कुछ हिस्सा पड़ जाता है, जो आवाज़ की कमनीयता को खो देता है, लेकिन चोट अवश्य ही करारी लगती है। गाल पर एक थप्पड़ में उँगलियों के निशान पड़ना मुमकिन नहीं है, अतः प्रकट है कि थप्पड़ और चाँटे में ज़मीन-आसमान का फ़र्क है।

चाँटे के जोड़ का शब्द तर्माँचा है; मगर उसमें भी वह तेज़ी नहीं, जो चाँटे में है। इसके अलावा तर्माँचा बराबर वालों में इस्तेमाल नहीं होता। आमतौर से यह बड़ों की ओर से छोटा के लिए ही 'रिज़र्व' रखा जाता है। थप्पड़ को कहीं-कहीं लप्पड़ भी कहते हैं, परन्तु यह शब्द प्रवाहयुक्त नहीं है; मगर क्या किया जाय, जहाँ पर मजबूरी यह हो कि एक तरफ़ तो गाल किसी मोटे आदमी का हो, तो दूसरी ओर हाथ भी मौलाना शौकत अली का, जिसमें चरबी की अधिकता ने सुस्ती पैदा कर दी है। मतलब यह कि इसी किस्म के और भी कितने शब्द हैं। इन्हीं शब्दों में से एक बहुत ही मौजू और चलता हुआ शब्द है 'ज़पाटा'। युक्तप्रान्त से उतर कर शायद भूपाल की तरफ़ बोला जाता है। इस भूपाली ज़पाटे में बिजली की सी गीत और हृद दर्जे की तेज़ी मौजूद है। इसका प्रचण्डता वर्णन से बाहर है। असल में यह चाँटा ही है, मगर बेहद तेज़ किस्म का। अपनी तेज़ी और प्रचण्डता के कारण चाँटे और तर्माँचे की चटाखंदार आवाज़ विशेषकर 'ज़पाटे' का ज़न्नाटा अपना आतङ्क उत्पन्न कर देता है। इसलिए 'ज़पाटा' वह चाँटा है, जिसमें चाँटे का सारा खतरनाक बारीकियाँ और उम्दगीयाँ मौजूद हों और उनके अलावा बिजली की-सी तेज़ी भी हो। ख़ैर, इस छोटी सी भूमिका के बाद अब मैं फिर अपना किस्ता शुरू करता हूँ।

आमतौर पर मुसाफ़िरोँ का कायदा है कि सफ़र की गड़बड़ में में अक्सर ज़रूरी चीज़ों भी साथ लेना भूल जाते हैं—जैसे टिफिनदान, लोटा, अक़ल, मनुष्यता, सम्यता भलमन्वी वगैरह-वगैरह। कुछ लोग तो असबाब के बखेड़ों से बचने के लिए जानबूझकर ज़रूरत की चीज़ें लेकर नहीं चलते। यही हालत हमारे भाई शज़री का है। वे सफ़र में असबाब के झमेलों के कारण इस तरह की तमाम चीज़ें

*पंजाबी में थप्पड़ को 'लप्पड़' कहते हैं और पंजाबी थप्पड़ को लप्पड़ समझना बिल्कुल ठीक है।

घर पर ही छोड़ आया करते हैं, अतः इस सफ़र में भी यही हुआ । लोटा-गिलास के साथ-साथ वे अक्ल, तहज़ीब और भलमन्सी को भी घर की मेज़ की दराज़ में बन्द कर आये थे !

वह मोटे-ताज़े सज्जन, जिनसे भाई शज़री से प्लैटफ़ार्म पर मुठभेड़ हो गई थी, ड्योढ़े दर्जे के डिब्बे में पूरी एक सीट पर लम्बे हो रहे थे । मुँह पर अख़बार था । डब्बा छोटा था, जगह विलकुल न थी । दूसरे मुसाफ़ि़रों के आराम की यह उपेक्षा और लापरवाही भाई शज़री को बेहद नागवार गुज़री, इसलिए उन्होंने कहा — “अख़बार फिर पढ़ियेगा, ज़रा उठकर बैठिये ।”

उन्होंने अख़बार को मुँह पर से हटाया और अपनी टाँगें सिकोड़ लीं, ताकि हम लोग वहाँ बैठ जायँ और फिर अख़बार मुँह पर । भाई शज़री को भला इस गुस्ताख़ी की ताब कहीं ? उनके हाथ से अख़बार छीनकर डाँटा — “आप आदमी हैं……”

वह तड़पकर उठे । अख़बार की तरफ हाथ बढ़ाते हुए बोले — “यह क्या बदतमीज़ी ?” — भाई शज़री ने अख़बार ऊँचा करके कहा — “या वहशत !”

“इधर लाओ अख़बार, बदतमीज़ कहीं का !” — उन्होंने आगे होकर कहा ।

इसके जवाब में भाई शज़री ने उनका छै आने का ‘टाइम्स आफ-इण्डिया’ रेल के बाहर फेंक दिया ।

इधर भाई शज़री ने अख़बार फेंका, और उधर उन्होंने जल-भुनकर एक अस्सी नम्बर का ‘ज़पाटा’ इस जोर से भाई शज़री के बाएँ गाल पर रसीद किया कि रेल की घड़घड़ाहट और ज़नज़नाहट के होते हुए भी ज़पाटे के ज़नाटे और तड़ाके से डिब्बा गूँज उठा । भाई शज़री का मुँह चर्ख़ों की तरह घूम गया । उनका बाँका फेल्ट हेट वह जा गिरा ।

भाई शज़री ने सम्हलते ही एक, दो, तीस हाथ ताबड़तेड़ उनके दिये । उन्होंने भी हमले को रोक पचहत्तर नम्बर का एक और 'जपाटा' भाई शज़री को रसीद किया; मगर अब मैं भी अपने दोस्त की मदद पर आ पहुँचा था । मगर मेरे तीन धूमों में से एक तो ऊपरवाली बेंच पर पड़ा और दो दुश्मन के लोग थे । इस बीच में उन दो जपाटों के सिवा दोनों तरफ़ से दस-बीस हाथ चल चुके थे । यह सब कुछ पलक मारते ही गया । हम दोनों दुश्मन पर भारी पड़ते कि "हैं हैं" करके दो तीन मुसाफ़रों ने बीच-बचाव कर दिया । इसके बाद गाली-गलौज की मंजिलें तय होने लगीं । इस मुश्किल से लोगों ने शेरों को काबू में किया कि बयान से बाहर है । हम दोनों दुश्मन का कुछ न बिगाड़ सके थे, क्योंकि दर असल मैं ऐसे मौक़े पर था कि इस जङ्ग में अच्छी तरह हिस्सा न ले सकता था ।

अब इस जङ्ग के नतीजे पर गौर कीजिए । चाय की प्याली के कुन्डे की धारदार कगर में दुश्मन की बाईं हथेली की पीठ पर गहरा जख़म लगा था । उस इस जख़म के सिवा दुश्मन पर कोई वार सच्चा न उतरा था । या तो कलाई पर रुक गये थे, या ओछे पड़े थे; मगर इधर भाई शज़री के गालों पर 'जपाटों' के निशान इस सफ़ाई से मौजूद थे कि कान तक गवाही दे रहे थे । कहने को तो यह 'मार-पीट' थी; मगर वास्तव में थी केवल 'पीट', क्योंकि गौर करने पर मुझे इसी नतीजे पर पहुँचना पड़ा कि भाई शज़री ख़ूब पिटे । मेरे शेर ने भी क्या-क्या चाँटे दिये कि हँसी को रोकना मुश्किल हो गया । हम दोनों अब दूसरी बेंच पर बैठ गये, और बातें करनी शुरू की । भाई शज़री ने इस शान से सिगार निकालकर सुलगाया, मानो इनको पिटने से न तो कभी कोई ताल्लुक था, और न है ।

"इसको आगे चलकर ठोंकेंगे ।"—भाई शज़री ने मुझसे परामर्श की भाँति चुपके से कहा ।

“जरूर”—मैंने उत्तर दिया, और सोचने लगा कि इन शब्दों के कहीं यह अर्थ तो नहीं है कि इससे आगे चलकर भी पिटेंगे। क्योंकि यह नालायक शख्स सिर्फ़ तगड़ा ही न था, बल्कि हम दोनों से काफ़ी तौर पर निपट लेने की ताकत रखता था; मगर चाहता मैं भी यही था कि किसी तरह आगे चलकर इस मूज़ी को मारें।

अब हम दोनों में बातें शुरू हुईं। भाई शज़री का मैं उनके सेकेण्ड क्लास में भला क्या जाने देता और फिर शायद वह खुद भी न गये। ग़रज़ यह कि अब बातें शुरू हुईं, और सच-सच हाल एक दूसरे को बताना पड़ा। भाई शज़री लखनऊ जा रहे थे। वहाँ से एक दूसरी जगह एक अपने बड़े ‘गहरे-दोस्त’ से मिलने।

“यह कौन दोस्त है तुम्हारे ?”

“एक है।”—भाई शज़री ने जवाब दिया।

“कोन है आख़िर—क्या नाम है उनका, कुछ तो बताओ ?”

“दोस्त तो क्या है,”—भाई शज़री बोले—“एक अच्छा खासा उल्लू फाँसा है, अजीब अमहक है।”

“कोन ?”—मैंने पूछा।

“महज़ ज़रासी मुलाकात पर ख़त, ख़त पर ख़त ! मुलाकात का शौक ! तक्राज़े पर तक्राज़ा ! नाक में दम कर दिया है यार मेरे ने। मजबूरन वादा किया कि लखनऊ आये, तो तुमसे भी मिलेंगे। चलो, न यार, तुम भी चलो।”—मुझसे भाई शज़री ने ज़ोर देकर कहा—“चलो न तुम भी।”

वह हज़रत, जिनकी हमसे ज़ुबान हुई थी, अब तक ग़ौर से हमारी बातें सुन रहे थे, अब उठकर घूमते हुए पाख़ाना गये। मैंने कहा—“यार पहले यह बताओ कि है वह कौन ? क्या नाम है उनका ? क्या करते हैं ? तुमसे कब मुलाकात हुई ?”

भाई शज़री ने सारा हाल बताया—“ज़मींदार हैं। शिकार का बेहद शौक़ है। मुलाकात कभी नहीं हुई। ख़त-क़िताबत की मुलाकात है, और वह भी एक बन्दूक की लिया-बेची के ज़रिये। फिर भी एक दूसरे दोस्त के बड़े गहरे दोस्त हैं।”

“फिर तुमने उन्हें बेवकूफ़ और अहमक़ क्यों कहा?”—मैंने भाई शज़री से पूछा। उधर वह हज़रत पाख़ाने से वापस आकर भाई शज़री के चोट खाये हुए गाल पर अपनी उँगलियों के निशान गौर से देखने लगे। मुझसे आँखें चार हुईं और अपनी कारगुज़ारी को देखकर कुछ मुसकराये। सचमुच भाई शज़री को उन्होंने करारे ज़पाटे रसीद किये थे। शज़री भाई ने उनकी मुसकराहट और मुसकराने की वजह मालूम कर ली। भाई साहब तो जलभुन कर कबाब हो गये। आँखों ही आँखों में उनकी तरफ़ इस तरह देखा, मानो उन्हें खा ही जायेंगे। हम दोनों फिर बातें करने लगे। भाई शज़री ने इस सिलसिले में कहा—“मुझे ऐसे लोगों से दर असल सख़्त नफ़रत है कि ख्वाहमखाह का रटना रटे जाते हैं।”

मैंने कहा—“यार, पहली बार मिलेगा, तो खातिर तो बेहद करेगा।”

“तभी तो कहते हैं कि चलो तुम भी। ऐमा उल्लू कब फँसता है। ऐसा ठूँस-ठूँसकर खायेंगे कि याद करेगा कि आया था कोई!”

आपने देखा होगा कि बाज़ कारीगर एक छोटी-सी हथौड़ी और कील लिए स्टेशनों पर घूमते-फिरते हैं, और दो आने वाले से लेकर आपका नाम वहीं का वहीं बरतन पर खोद देते हैं। ऐसा ही एक कारीगर हमारे डिब्बे में आया। रेल रुकने पर स्टेशन पर वह लगा एक साहब के लोटे पर नाम खोदने। भीड़ लग गई। किस क़दर सफ़ाई से ख़ूबसूरत हरफ़ों में नाम खोदता था। बेहद पसन्द आया। खासकर भाई शज़री को। वह नये फ़ैशन के आदमी, उनके पास भला लोटा क्यों

होता ! मेरा टोंटीदार (मुसलमानी) लोटा लेकर कहने लगे, इस पर नाम खुदवायेंगे । मैं इसके विरोध में था, मगर भाई शज़री न माने और नाम खुदवाने लगे । नाम खुदवाकर लोटा तो एक किनारे रखा, और लगे हम दोनों स्टेशन पर टहलने ।

(३)

कानपुर के स्टेशन पर हम लोगों को इसकी फ़िक्र हुई कि अपने दुश्मन को किस तरह मारें; मगर कोई तदबीर बन न आती थी । वह लखनऊ जा रहा था, इसलिए तय हुआ कि लखनऊ पहुँच कर मारेंगे । लखनऊ भी दूर न था । सफ़र का ज्यादा हिस्सा भाई शज़री ने मेरे ही साथ तय किया था । यों तो मैं भी उनके साथ कभी-कभी सेकेण्ड क्लास में जा बैठता था । लखनऊ का स्टेशन जब करीब आया, तो भाई शज़री ने मुझसे सलाह की कि इसे अब मारो । मौक़ा भी मिल गया । मैं असबाब वग़ैरह लेकर स्टेशन से फ़ौरन बाहर निकल गया, और भाई शज़री उसी लोटे से सशस्त्र होकर दुश्मन की आंर बढ़े । दाँव भी ख़ूब मिला । वह लगा ट्रंक का कुण्डा पकड़कर कुली के सिर पर लदवाने, और पीछे से भाई शज़री ने कूल्हे पर लोटे का टोंटी पकड़कर दिया कस कर ! जैसे भीमसेनी गदा पड़ी हो । फिर वे जो सरपट भगें, तो इस तेज़ी से कि मेरे पास से होकर निकल गये; और बौखलाहट में मुझे देखा तक नहीं ! जब मैंने आवाज़ दी, तो घबड़ाकर कहा—“चलो, जल्दी भागो ।” क्योंकि ख़ूब जानते थे कि अगर कहीं पकड़ पायेगा, तो बेतरह कुन्दी करेगा; मगर फिर उस मूज़ी का पता न लगा ।

लखनऊ में हम दोनों दो दिन साथ रहे । फिर भाई शज़री और हम दोनों बाराबङ्की चले । उन्हीं दोस्त से मिलने, जिनका ज़िक्र भाई शज़री ने ट्रेन पर किया था । गाड़ी जो बाराबङ्की स्टेशन पर पहुँची तो—सर तो हम दोनों निकाले ही हुए थे—वही मूज़ी खड़ा दिखाई दिया ।

हम दोनों से आखिरी चार हुईं ! भाई शज़री ने गड़ाप से गरदन अन्दर कर ली । मैंने उनसे कहा—“अब यह तुम्हें छोड़ने का नहीं, बुरी तरह ठोंकेगा ।”

“इसकी ऐसी-की तैसी !” भाई शज़री ने कहा और कुछ सोच में पड़ गये । गाड़ी रुकी, तो झटके से गाया वह जाग-से पड़े । इधर मैंने पुकारा—“कुली !” और उधर वह मूज़ी सर पर ! भाई शज़री ने लोटे की गदा हाथ में लेकर कहा—“सर फोड़ दूँगा ।” मगर वह न मालूम किस गड़बड़ में था, घँसा दिखाकर तेज़ी से चलता बना । असबाब उतरवा कर हम दोनों इधर-उधर देखने लगे, क्योंकि भाई शज़री ने अपने बाराबङ्की पहुँचने का तार दे दिया था, और पूरी उम्मेद थी कि उनके दोस्त स्वागत के लिए स्टेशन जरूर आयेंगे । इन्तज़ार कर रहे थे कि फट आया वह मूज़ी ।

“आप कहाँ से आये हैं ?” उसने गाया भाई शज़री को ठोकने की सूचना दी ।

“जहन्नुम से,”—भाई शज़री ने लोटा तानकर कहा—“सर फोड़ दूँगा ।”

“जानते हो, कहाँ हो ?”—उसने कहा—“रेल के धोके में मत रहना, यह बाराबङ्की है । सारी साहब बहादुरी भुला दूँगा ।”—यह कहकर शुक्र है कि वह चलता बना । इधर हम दोनों ने आपस में इससे कहीं अधिक भयङ्कर शब्द उसके लिए इस्तेमाल किये ।

हम लोग कुछ देर तक इन्तज़ार करते रहे । आखिर में भाई शज़री ने कहा—“तार मिला न होगा ।”

कुली से असबाब उठवाकर बाहर निकले, ताँगा किया । अपने दाँस्त का नाम और पूरा पता बताया कि ले चलो वहाँ !

एक गली के किनारे पर ताँगे को छोड़कर हम दोनों इस खयाल से कि मकान का पता लगा लें, तो ताँगा इधर लायें । अन्दाज़ से एक

मकान पर पहुँचे । दरवाजा खटखटाया एक साहब से मालूम हुआ कि दो मकान छोड़कर तीसरे में दरियाफ्त कीजिए । वहाँ पहुँचे । एक बड़ा-सा आलीशान फाटक था । अन्दर पहुँचे । नौकर से पूछा । मालूम हुआ कि अन्दर हैं । नौकर से बुलवाया तो कहा कि बैठिये !

आपको यकीन न होगा कि अन्दर से वही मूजी निकला और निकलते ही सामने वाले कमरे में चला गया । वह रोशनी में था, और हम अँधेरे में । “यह तो वही है”—घबराकर भाई शज़री ने कहा, और नौकर से पूछा—“यही है ?”

जैसे ही नौकर ने कहा—“हाँ !” वैसे ही भाई शज़री ने तेजी से कहा—“यार भागी ।” हम दोनों सरपर पैर रखकर जो भागें, तो ताँगे पर आकर दम लिया । और वहाँ से सीधे स्टेशन ! साढ़े नौ बजे की गाड़ी से वापस लखनऊ ! घर पहुँचने के पहले भाई शज़री ने लखनऊ से ही माफ़ी का एक तार लिखकर भेज दिया कि अफ़सोस, मैं वादे पर हाज़िर न हो सका ।

आज तक उस अनजान दोस्त से ख़त-किताबत के ज़रिये भाई शज़री की दोस्ती उसी तरह कायम है । वास्तव में बड़ी गहरी दोस्ती है !



एकका

“दस बजे हैं।”—लेडी हिम्मतकदर ने अपनी मोटी सी कोमल कलाई पर आँख डालते हुए कहकर जम्हाई ली। नवाब हिम्मतकदर ने अपनी डरावनी मूँछों में से दाँत चमकाकर कहा, “ग्यारह बजे तक तो हम अवश्य फू पहुँच ...।”

मोटर को एक झटका लगा और त्योरी पर बल डालकर नवाब साहब ने एक झोंके के साथ मोटर का पहिया गड़हे से निकाला और, एक विचित्र लहजे में कहा—“लाहौल बिला कूह, कच्ची सड़क ...।”

धूल और गर्द का एक बहुत बड़ा तूफान पहिये के नीचे से उठा, जिसे हमने अपने मोटर से पीछे छोड़ दिया—“कितने मील और होंगे?” लेडी हिम्मतकदर ने मुसकराते हुए पूछा।

मैंने कुछ गम्भीरता से जवाब दिया, “अभी अट्हाइस मील और हैं।” नवाब साहब ने मोटर की चाल और तेज़ कर दी।

“हुजूर धीरे-धीरे, हुजूर रास्ता खराब है।” पीछे से अदब के साथ शोफ़र ने नवाब साहब की सेवा में निवेदन किया। किन्तु नवाब साहब को तेज़ मोटर चलाने की पुरानी आदत थी। उन्होंने कहा, “फिश”, और कदाचित् मोटर और तेज़ कर दी, क्योंकि कच्ची सड़क से जी उकता गया था।

मोटर पूरी चाल से हचकोले खाता चला जा रहा था और हम लोग मोटर की अच्छी कमानियों और मुलायम गद्दों पर हचकोलों से कष्ट उठाने के स्थान पर आनन्द से झूलते चले जा रहे थे।

सामने एक ना-समझ एका चला जा रहा था। दूर से ही नवाब साहब ने हार्न देने आरम्भ कर दिये, जिससे कि एका पहले ही से सड़क के एक ओर हो जाय और मोटर की चाल कम न करना पड़े। लेकिन एका की चाल देखिए, जब तक वह एक ओर हो, मोटर सर पर पहुँचा और विवशतः चाल कम कर देनी पड़ी। नवाब साहब ने लाल-पीले होकर एका की ओर मुँह करके तेज़ी से 'हाल्ट' कर दिया। भगवान ही जानता है, उसने उसे सुना भी या नहीं।

देखने में वह ना-समझ एका अपने एकाकेवाले के सहित धूल गर्द के तूफान में चक्कर खाता हुआ न जाने कितनी दूर रह गया।

लेडी हिम्मतकदर ने एका को देखने के लिए असफल प्रयत्न किया, और फिर मुसकुराकर अपने स्वाभाविक लहजे में कहा, "आपने उसको देखा ? उसको - एका को। या खुदा, कैसी सवारी है। प्रलय तक इष्ट स्थान पर पहुँच ही जायगा। क्या आप कभी... क्षमा कीजियेगा... कभी एका पर आप बैठे हैं।"

"जी हाँ"। मैंने हँसकर कहा "बैठा हूँ, और प्रायः बैठा हूँ।"

नवाब हिम्मतकदर ने मोटर की चाल और तेज़ करते हुए कहा, "हैं ! अच्छा ! एका पर ! एका पर आप बैठे हैं ! खूब ! भई, क्षमा करना ! बड़ी अपमानकर और बुरी सवारी है। हमारे ऊँचे खान्दान का कभी कोई व्यक्ति एका पर नहीं बैठा।"

फिर कुछ लापरवाही से नवाब बोले, "खुदा ही जाने, लोग इस पर कैसे यात्रा करते हैं। बड़ी खराब सवारी है।" नवाब साहब ने कुछ गर्व और रोब के लहजे में बात समाप्त की।

"फिर मज़ा यह"—लेडी हिम्मतकदर बोलीं—"मज़ा यह, कि

तीन-तीन आदमी एक साथ बैठे हैं ।” मुझसे उन्होंने पूछा, “क्यों साहब आप अकेले बैठे हैं, या कई आदमियों के साथ ?”

“मैं अकेला भी बैठा हूँ, और चार आदमी साथ भी बैठे हैं, और पाँचवाँ एका वाला ।”

“पाँच आदमी !” —लेडी हिम्मतकदर आश्चर्य से बोलीं —“ऐं ! पाँच आदमी ! चर्र..... पाँच आदमी.....आव !”

मोटर को एक बहुत बड़ा झटका लगा । शोफर पीछे से लुढ़क कर लेडी हिम्मतकदर की गोद में गिरा । नवाब साहब ने स्ट्रिंग और हेडिल छोड़कर नट का अभिनय किया, अर्थात् बैठे ही बैठे उल्टी कलावाजियाँ ऐसी खाईं, कि गद्दे से उछलकर मेरे ऊपर गिरे । और इस गड़बड़ के साथ ही एक बम का गोला-सा फटा । लेडी हिम्मतकदर की तेज और दर्दभरी चीख, मोटर के टायर की बम बाजी, नवाब साहब का मेरे ऊपर अचानक गिरना और फिर इन सब बातों का परिणाम, अर्थात् बेहोशी ! मोटर के भीतर ही भीतर प्रलय-न्ता आगया । होश आने पर मालूम हुआ, कि कुशल से बीती । केवल उछल-कूद ही भर रही । मैंने अपने ऊपर नवाब साहब के गिरने की स्वयं उनसे उल्टी जमा चाही । अच्छी तबियत के आदमी हैं । उन्होंने कुछ खयाल ही नहीं किया, बल्कि मुझसे पूछा, लगी तो नहीं । मेरी छाती में नवाब साहब का सिर गोले की तरह आकर लगा था । लेकिन मैंने कहा, बिलकुल नहीं लगी । यह सोच लिया गया, कि सबसे अधिक लेडी हिम्मतकदर को लगी है, और सबसे कम शोफर को । इसी हिसाब से हमने एक दूसरे की मिजाज पुर्सी भी की थी ।

बहुत शीघ्र दूसरा पहिया चढ़ा लिया गया । लेकिन अब गन चलाते हैं, तब मोटर नहीं चलता । बहुत शीघ्र कारण का पता चल गया । पेट्रोल की टंकी में एक छेद था, जिसको काग लगाकर बन्द

कर दिया गया था। हचके से वह अपनी जगह से खिसक गया। भगवान ही जानता है कुछ देर पहले या इस समय। कुछ भी हो, पेट्रोल बह चुका था। अब जो ध्यान से देखने हैं तो जमीन तर थी। अब क्या हो ? स्टेशन यहाँ से लगभग अट्ठाइस मील होगा और फिर कच्ची सड़क। जाना भी इस तरह आवश्यक। सड़क बिलकुल सुनसान थी।

इस घबड़ाहट और निराशा की हालत में क्या देखते हैं, कि बिलकुल सड़क की सीध में मानां सड़क रूपी आकाश पर आशा का एक प्रकाश उदय हो उठा, अर्थात् उसी टूटे-फूटे एक्के की छतरी झलकी। फिर उसके बाद एक्के का ढाँचा दिखाई पड़ा जिसने बिजली की गति के साथ पूरे एक्के की सूरत ग्रहण कर ली।

हम एक दूसरे को देखते थे, और कभी एक्के को। तब तक एक्का पास पहुँचा, और सामने आया। कुछ धीमा हुआ, और लगभग रुक-सा गया। बल्कि एक्केवाले के धूलि से सने हुए चेहरे पर हर्ष की झलक के साथ कदाचित् उसके ओठ भी हिले। लेकिन यहाँ सब चुप। लेडी हिम्मतकदर ने ठीक इसी समय एक विचित्र दृष्टि डालकर आँखों ही आँखों में नवाब हिम्मतकदर से कुछ कहा और उन्होंने शीघ्र उसी तरह आँखों ही आँखों में लजाते हुए कदाचित् मुझसे कुछ कहा। मैंने उसी समय लेडी हिम्मतकदर की ओर देखा, जिन्होंने कनखियों से एक्के के पहिये की ओर देखकर अपने मुलायम आँगूठे से जमीन खुरेदना आरम्भ किया। एक्का आगे जा चुका था। वास्तव में दुख तो यह था, कि मुझे छोड़कर और किसी को एक्केवाले को पुकारना तक न आता था। मैं अलबत्ता निपुण था। बेवसी बुरी बला है। मैंने नवाब साहब और लेडी हिम्मतकदर की परेशानी को देखकर मन ही मन में कहा, मेहरबान, आपकी परीशानी मेरे सर आँखों पर, और जोर से आवाज़ दी, “अबे ओ एक्केवाले।”

X

X

X

अब प्रश्न यह था, कि लेडी हिम्मतकदर इस पर कैसे बिठाई जायँ । नवाब साहब ने मुझसे कहा, 'आप ही कोई उपाय निकालिए ।' क्योंकि मुझे छोड़कर यहाँ और कौन एकके का जानकार था । लेडी हिम्मतकदर का एक ओर से मैंने हाथ पकड़ा, और दूसरी ओर से नवाब साहब ने । बेगम साहिबा ने एक पैर पहिये के धुरे पर रक्खा, और दूसरा पहिये के हाल पर, और उसके बाद कदाचित् अड़ने का प्रयत्न किया, कि हाथ पर से पैर खिसक गया । वह चीख मारकर पंख कटी मैना की तरह मेरी ओर फड़फड़ाई । क्या करता, विवशतः मैंने उनको संकोच के कारण छोड़ दिया, नहीं तो वे मेरी गोद में होतीं । घुटने पर हाथ के साथ-साथ उन्होंने पैर भी चला दिये, और उनके बूट की ऊँची तथा नोकिली एड़ी आदरणीय पति की नाक पर लगी । परिणाम यह कि वे नवाब साहब के हाथ से भी छूट गईं और नवाब साहब को लेके पहिये के पास ही कुछ दूर पर जा गिरीं ! मैंने कहा, हे ईश्वर ! नवाब साहब मुझे भाड़ते हुए, मुझसे शिकायत करते हुए उठे और बेगम साहिबा को भी सँभाला । अब यह निश्चय हुआ, कि एकके को मोटर के पास खड़ा किया जाय, और उस पर से लेडी हिम्मतकदर एकके पर बैठ जायँ । अतः यही किया गया । बराबर में नवाब साहब बैठे, और मैं आगे बैठा । एककेवाले ने 'टिक्-टिक्' की आवाज ऊँचो को । 'चूँ, चूँ, चूँ' और एक्का चल पड़ा ।

नवाब साहब और लेडी साहिबा को मालूम हुआ, कि स्वयं अपने जूतों से अपने कपड़े मैले हो रहे हैं । शीघ्र मामिले को मेरे सामने रखकर मुझसे उसकी दवा पूछी । एककेवाले ने भट कहा, कि "या तो आप दानों अपने-अपने जूते उतारकर हाथ में ले लीजिये, नहीं तो मैं आगेवाले घास के डिब्बे में रख दूँ ।" उसने घास का डिब्बा खोला तो उसमें दो तीन रस्सियाँ, एक चिलम, एक हथौड़ी और थाड़ा सा कील बगरह था । नवाब साहब अब तक चुप थे । एकक

वाले पर बहुत बिगड़े। मैंने नवाब साहब को समझा दिया, कि कपड़े तो जूते से मैले होते ठीक ही हैं। और फिर एक्के की खूबियों का बयान किया, जिसमें पैर रखने के लिए पायदान भी होता है। वह होता तो कदाचित् लेडी हिम्मतकदर को चढ़ने में इतनी कठिनाइयों का सामना न करना पड़ता।

एक्केवाले ने अपनी पोजीशन इस प्रकार साफ की, साहब पायदान कमानादार एक्के में होता है, और मैं कच्ची सड़क पर चलाता हूँ। इसलिए कमानादार एक्का नहीं रखता। इस पर तो दो दिन में कमनियाँ चूर हो जायँ। एक्कावाला कुछ अपने पेशे की होशियारी के रङ्ग में आकर बोला, “हुजूर, बस यहाँ तो ‘खड़िया’ एक्का चलता है। कच्ची सड़क का यह बादशाह है। न लोटे, और न टूटे। मुसाफिर भी आनन्द से चैन की बन्शी बजाता जाता है।”

“चुप……” नवाब साहब ने भन्नाकर एक्केवाले से कहा।

×

×

×

कुछ देर बाद नवाब साहब ने पैतरे बदलने आरम्भ किये। उनका घुटना मेरी पीठ में बुरी तरह गड़ रहा था। लेडी हिम्मतकदर एक हाथ से अपनी नाजुक छतरी लगाये थीं, और दूसरे हाथ से एक्के का डण्डा पकड़े थीं। उनके दोनों हाथ देर से दुख रहे थे। हर झटके पर इस प्रकार चीखती थीं, कि मालूम होता था, कि मर गईं। नवाब साहब के दुष्ट घुटने के गड़ने के कारण मैं धीरे-धीरे आगे खिसकता जाता था। लेकिन जितना मैं हटता, उतना ही कदाचित् नवाब साहब का घुटना और बढ़ता जाता। मेरी बुद्धि काम न करती थी, कि क्या करूँ, जिससे इस घुटने से त्राण मिले।

इतने में एक झटका लगा, और नवाब साहब की नाक एक्के के आगेवाले ढण्डे में लगी। ठीक जगह, जहाँ मैं उसको हाथ से पकड़े था। मेरी छोटी उङ्गली कुचल गई। “चोट तो नहीं लगी”—नवाब

साहब ने मुझसे पूछा । “आपको तो नहीं लगी”—मैंने उनकी लाल नाक को देखते हुए कहा । दोनों के जोर से लगी थी । मेरी छोटी उझली में और उनकी नाक में । लेकिन दोनों झूठ बोले, और जवाब एक था, “जी नहीं, बिलकुल नहीं ।” सचमुच झटका भी ऐसा लगा था, कि यदि कहीं मेरी उझली उस जगह पर न होती तो नवाब साहब की नाक पिन्ची हो जाती ।

X

X

X

“ज़रा उधर हटिये”—लेडी हिम्मतकदर ने नवाब साहब से दुख के स्वर में कहा । नवाब साहब ने अपनी प्यारी बेगम के कहने से करवट-सी बदलकर काँई आध इञ्च धुटना और मेरी पीठ में घुसेड़ दिया ।

मैंने घुटने की नाक को, हाँ साहब घुटने की नाक को, जो बुरी तरह तकलीफ दे रही थी, थोड़ा खिसक कर शरीर के दूसरे भाग पर लिया ।

“तेज़ नहीं चलता”—एककेवाले से नवाब साहब ने जोर से कहा । उसने सूत की रस्सी की लगाम को झटका देकर घोंड़े को टिटकारा दिया, और लगाम के बड़े हुए भाग को घुमाकर दोनों ओर से घोंड़े को झाड़ दिया । फिर दूसरी बार घुमाकर जो सड़ाका दिया तो मेरी ऐनक लगाम के साथ उड़ी चली गई और इसके पहले, कि मैं अपनी नाक पर हाथ ले जाऊँ, कि कहीं ऐनक नाक सहित तो नहीं चली गई, ऐनक रस्सी सहित लेडी हिम्मतकदर के बालों में जा उलझी । लेडी हिम्मतकदर चीख पड़ीं । रस्सी मेरी नाक के नीचे से होती हुई गई थी । मानों मेरे मुँह में सहसा लगाम दे दी गई । स्वभावतः मेरा हाथ साथ-साथ उस पर पहुँचा, और मेरी ऐनक ने लेडी साहिबा के बाल खींचे । वं बोलीं “चख...चर...ची ।”

ऐनक सावधानी के साथ उक्त लेडी साहिबा के बालों में से सुल-
झाकर निकाली गई। एककावाला डर के मारे काँप रहा था। खूब
डाँटा गया। बल्कि पिटते-पिटते बचा। फिर सँभलकर बैठे, और
इस सिलसिले में नवाब साहब का घुटना एक आध इंच और मेरी
कमर में घुस आया। त्रिवश होकर मैं और कुछ आगे खिसका,
लेकिन वहाँ जगह कहाँ ? मैं पहले ही किनारे पर आ गया था।

×

×

×

लेडी हिम्मतकदर पर तीन प्रकार की छुआ थी। एक तो नवाब
साहब की, दूसरे एकके की छतरी की, और तीसरे स्वयं उनकी नाजुक
छतरी की। लेकिन धून तेज़ थी। एकके को छतरी, प्रगट है, कि यदि
धूप से कुछ बचाव कर्ता है, तो वह भाँ ठाँक बारह बजे, और बारह
बजने में अभी देर थी।

हर एक प्रकार की छुआ के होते हुए भी लेडी हिम्मतकदर गर्मी
से व्याकुल थीं। सड़क कुछ अच्छी आगई थी, और एकका अब
गति के साथ चला जा रहा था। प्रत्यक्षतः अब किसी तरह का कष्ट
न था। अब ऐसे अवसर पर गर्मी का कष्ट अवश्य ही बोध हुआ।
लेडी हिम्मतकदर ने कुछ बेचैन होकर कहा, “खुदा बचाये, मरी जा
रही हूँ गर्मी के...”

बात पूरी भी न हुई थी, कि एककावाला अपनी सुरीली आवाज़
में एक आधा पद गा उठा, “हम मरे जाते हैं, तुम कहते हो
हाल ...”

“अबे नालायक”—यह कहकर एक ओर से नवाब साहब गरजे,
और दूसरी ओर एक कुहनी उसकी बगल में मारकर मैं बरस पड़ा,—
“बेहूदा, नालायक, गुस्ताख, बदतबीयत, बदतमोज़।” फिर नवाब
साहब इस प्रकार गड़गड़ाये और बड़बड़ाये जैसे कोई बड़ा सा खाली
बरतन पानी में डूबता है और उसे बुरी तरह डाँटा। और इस डाँट-

डपट के साथ ही साथ नवाब साहब ने कोई एक आध इंच और अपना बारीक घुटना (मोटे ताड़ों थे) मेरी कमर में भोंक दिया ।

वास्तव में उस समय एक्केवाले की ग़लती न थी । यदि एक सुस्त एक्के पर लम्बी यात्रा का आपको अवसर मिला है, तो प्रायः ऐसा होता है कि एक्का घोड़े की शक्ति के अनुसार एक निश्चिन्तता और स्थिरता की गति पकड़ लेता है । झटके नियत हो जाते हैं, और झकोलों का एक प्रबन्धित क्रम-सा बँध जाता है । पहिये की 'चर्ख चूँ' एक टायमिङ्ग (नियत समय) में बँध जाती है । घोड़े के पैर नपे-तुले पड़ते हैं । मुसाफ़िरोँ के सिर नियत सीमाओं में माला की मोतियों का तरह एक दूसरे से मिलते हैं । आगस में सिर टकराने की सम्भावना जाती रहती है । मतलब कि हर चीज़ जब क्रमबद्ध होकर एक्के को पूरा पोइट्री आफ मोशन, (कविता का प्रवाह) बना देती है, तो मालूम होता है, कि एक्का चल नहीं रहा है, और एक्के वाले को तबीयत एक विचित्र आनन्द से मूर्छित-सी हो जाती है, खास कर जबकि किराया उचित मिला हो । वह कुछ छाती के बल झुककर आँखें अर्द्धखुली बनाये हुए न जाने कहाँ पहुँचाता है । उसे इसका भी ध्यान नहीं रहता, कि इक्के पर कौन है, कौन नहीं, और फलतः वह अज्ञाप उठता है । इसलिए अगर ध्यान से देखा जाय तो यहाँ एक्केवाले की कोई ग़लती न थी ।

मैंने इस मनोविज्ञान को नवाब साहब और उनकी बेगम साहिबा को समझाने का प्रयत्न किया । बेगम साहिबा आधे से अधिक इस विज्ञान को समझ चुकी थीं, कि उन्होंने सहसा चेहरे को भय-पूर्ण बनाकर रेल की सीटी देने का प्रयत्न किया, और छतरी दूर फेंकी । "अरे रोक, रोक" एक ओर से नवाब साहब चिल्लाये, और दूसरी ओर मैं चिल्लाया, "कम्बख्त, रोक ।"

बेगम साहिबा की रेशमी साड़ी पहिये में उलझ गई थी। और यदि एक्का न रुकता, तो चूँकि रेशम मज़बूत होता है, वे अवश्य नीचे दिखाई पड़तीं। नहीं तो, द्रोपदी महारानी की कथा आरम्भ हो जाती। साड़ी का सुनहला काम सब खराब हो गया था। नवाब साहब बहादुर एक्केवान पर बहुत ही जलभुन रहे थे। इस कारण से नहीं, कि साड़ी मूल्यवान थी, बल्कि इस कारण से, कि पहिये ने बेगम साहिबा की लापरवाही से अनुचित लाभ उठाते हुए धृष्टता की थी, और वह स्वयं एक्के का था, और एक्का स्वयं एक्केवाले का।

मैं चूँकि एक्के पर बैठने का पंडित था, इसलिए मेरी ओर नवाब साहब ने जिज्ञासु चेहरे से देखा। क्योंकि मैंने एक्केवाले को एक शब्द भी नहीं कहा था। इस प्रकार मैंने सही बताया, कि निस्सन्देह ऐसा भी होता है, और इसमें एक्केवाले का कोई अपराध नहीं, बशर्ते कि वह एक्के को रोकने में जान-बूझकर देर न करे। लेडी हिम्मतकदर ने मुझसे पूछा, “क्या साहब, क्या आपकी बीबी के साथ भी कभी ऐसा हुआ है?” मैंने जवाब दिया, “मेरी बीबी तो भगवान की दया से बची हैं, लेकिन स्वयं मेरे साथ कई बार ऐसा हुआ है, और अचकन का किनारा प्रायः खराब हो गया है या कट गया है।”

X

X

X

“यह कील तो मारे डालती है”—नवाब साहब ने बेकल होकर पैतरा बदला और कील की जगह को टटोलकर आध इञ्च और अपना घुटना मेरी कमर में जोड़ दिया। नवाब साहब भारी भरकम आदर्मा थे। आप कहेंगे कि उनका घुटना फिर बारीक,—तो निवेदन है कि एक मोटी चीज़ भी जिस समय स्थिर ढङ्ग से शरीर में जुड़ने का प्रयत्न करती है और वह भी फिर एक्के पर, तो उसकी चुभन किसी प्रकार नोकदार चीज़ की चुभन से कम कष्टकारक नहीं होती। मैं

प्रसन्न था, कि नवाब साहब के जंघे में एक कील चुभ रही है और मेरा बदला ले रही है। यद्यपि एक्के पर गद्दी थी, और उस पर फिर दोहरी चादर, लेकिन एक्के की कील नवाब साहब को व्याकुल किये देती थी।

थोड़ी देर बाद नवाब साहब कील से आकुल होकर उकड़ूँ को तरह की करवट से बैठ गये। उनका सिर एक्के के हचकों के साथ विचित्र तरह से घूम रहा था। अर्थात् इस तरह, कि यदि उनकी नाक पर पेन्सिल बाँध दी जाती और उसके सामने कागज़ होता तो एक गोल घेरा बन जाता। लेडी हिम्मतकदर को ऐसे झटके लग रहे थे, कि उनकी नाक पर यदि पेंसिल होती तो आधा घेरा तो ठीक बनता, लेकिन फिर पेंसिल कागज़ में चुभ जाती, और वह फट जाता। और मेरी नाक कदाचित् लहरिया बनाती। एक्कावाला चूँकि भिभका हुआ था, अतः उसकी नाक लाइनें खींच रही थी। तात्पर्य यह कि इस प्रकार हम सब भूमिति की शक्लें हल करने चले जा रहे थे।

X

X

X

आकाशीय विद्या के पंडितों की एक विचित्र खोज है। वह यह, कि सौर्य-मंडल के समस्त भाग नियत सीमाओं के भीतर अपने-अपने नियमों के अनुसार परस्पर मिलने के लिए आकर्षित होते रहते हैं। इस खोज के अनुसार जब प्रलय आयेगा, तब इस आकर्षण में अंतर पड़ेगा। परिणाम यह होगा, कि समस्त भाग विवश होकर आपस में लड़ जायेंगे। संयोग की खूबी, कि इस खोज का प्रारम्भ एक्के ही पर होता था। एक साधारण से गढ़े में एक बहुत साधारण-सा झटका लगा। लेकिन यह झटका ऐसा था, कि मानों सौर्य-मण्डल के प्रबन्ध को अस्त-व्यस्त कर दिया। आपस में सब के सिर लड़ गये। और फिर अलग होकर डंडों में जा लगे। इस दुर्घटना से और कुछ तो हुआ ही नहीं, लेकिन इसके कारण नवाब साहब का घुटना मेरी कमर

में जो भर और घुस आया। मैं बिल्कुल किनारे पर था। वह तो अब एक बीती हुई घटना थी, जब उनका घुटना आध इञ्च खिसकता था। अब तो जगह ही न थी। मैं तोते की भाँति अड़्डे पर बैठा था।

×

×

×

एकका कुछ दाबू वैसे ही था, अर्थात् आगे को झुका था। भाग्य की खूबी, कि नवाब साहब ने उस बुरी कील के कारण एक साधारण से झटके से व्याकुल होकर सहसा उछलकर बोझ आगे डाल दिया। एकके का साज़ क्या था ? बस, रस्सियों की जकड़बन्दी थी। भगवान ही जानता है, झटके से, लेकिन मैं तो कहता हूँ, कि किसी विचार से, लेडी हिम्मतकदर ने एक चीख के साथ अपनी छोटी सी छतरी मेरे सिर पर रख कर अपनी आर ज़ोर से घसीटा। उधर मैं परकटे तोते की तरह नवाब साहब के घुटनों की घृष्टता के कारण मानों अड़्डे पर बैठा ही था। वहाँ किनारे के अलावा रही क्या गया था ? वम जो सहसा जीन पर आ लगे, तो मैं आगे को गिरा। छतरी मुँह पर चढ़ी थी, दिखाई क्या देता, खाक़, और फिर दिखाई ही देता तो लाभ क्या ? झटके से छतरी तो बाद में अलग होगई लेकिन मैं विचित्र तरह से गिरा, दूर तक अपनी नाक जमीन से केवल बित्ता भर ऊँची किये दौड़ा ही चला गया। उधर प्रत्येक कदम पर यह आशा थी, कि शरीर अपने वश में आ जायगा, और खड़ा हो जाऊँगा, लेकिन यह आशा केवल कल्पना ही निकली और इस तरह टूट गई, कि दस बारह कदम की दूरी, इसी प्रकार नाक जमीन से कोई बित्ता भर ऊँची किये, समाप्त करने के बाद मैं अपनी नाक से सड़क की जमीन पर हल चला देने पर विवश हो ही गया।

उठा, अपनी नाक टटोली। सारा मुँह धूल से श्वेत हो गया। आँखों ने जब देखा, कि नाक का दृढ़ विचार है, कि हस्ताक्षर बनाऊँ, तो वे बन्द हो गई थीं, नहीं तो धूल में फूट ही जातीं लेकिन फिर भी

आँखों ने बहुत काम किया था। और अन्त तक खुली रहने के कारण उनमें मिट्टी घुस गई थी। हाथों ने बड़ी सेवा की, और खिल गये। नहीं तो मेरी नाक घिसकर रास्ते की धूल बन जाती। क्योंकि बिना अतिशयोक्ति के नाक ने फीट भर के लगभग जमीन पर एक गहरी रेखा खींची। कुछ भी हो, यह सब प्रत्यक्षतः हाँ चुका था। मैंने उठ कर देखा तो बेगम साहिबा दोनों हाथों से डंडों को पकड़े ज्यों की त्यों चीखें मार रही थीं। यद्यपि वे भय की स्थिति से बाहर थीं, और बैदरिया का तरह डंडे से चिरकी हुई थीं। नवाब साहब एकके के बम पर कुछ इस प्रकार आकर रुके थे, कि सन्देह होता था, कि वे लड़कों वाला खेल 'घोड़ा-घोड़ा' बम के डंडे से खेल रहे थे। बेचारा एकका वाला अलबत्ता पहिया के सामने 'चित्त' गिरा था। घोड़ा अपनी इस सामयिक बन्धन-मुक्ति को कल्याणकर समझकर स्वतन्त्रता पूर्वक सड़क के किनारे कुछ 'टिफिन' उड़ा रहा था।

बहुत शीघ्र एक दूसरे का कुशल समाचार, और तबियत का हाल पूछने से छुट्टी पाई। एककेवाले ने एकके के साज़ की गाँठा गाँठी और बाँध-बूँध की, लेकिन कुछ ठीक न बँधा तो नवाब साहब से उसने कहा, “आपके पास कोई रस्सी का टुकड़ा तो नहीं होगा?”

नवाब साहब ने उसका जवाब दिया, “उल्लू के पट्टे नाला... बे....” (भन्ना रहे थे) मैंने डाँडकर कहा, “अबे तू बिलकुल ही गधा है।”

एककावाला काँपकर बोला, “मियाँ” मैंने सोचा कदाचित् कोई टुकड़ा-उकड़ा निकल आये। फिर आप बताइये, क्या हो? बिना रस्सी के तो काम नहीं चलेगा।”

मेरा सूती रुमाल और बेगम साहिबा और नवाब साहब का रेशमी रुमाल, उन तीनों को मिलाकर दृढ़ता से साज की बन्द को एककेवाले ने बाँधा। झटके देकर अच्छी तरह, उसकी दृढ़ता का पता

लगाने के बाद उसने कहा, अब बैठ जाइये । नवाब साहब, चूँकि सबसे भारी थे, इसलिए एक्केवाले ने कहा, वे कुछ पीछे को दबे रहें । हम सब भली प्रकार बैठ गये । नवाब साहब पीछे को दबकर बैठे । इस प्रकार मानों गाव तकिया लगाये हों । और कुछ था, सो था, मैं प्रसन्न था कि नवाब साहब के घुटने से मेरी जान बची ।

लेकिन थोड़ी ही देर बाद नवाब साहब की पीठ में एक्के की सजावट चुभने लगी । क्योंकि यह एक्का आवश्यकता से अधिक मोंटे-मोटे नीले-नीले मोतियों से सजा हुआ था, जो मजबूत तारों में पिरोकर डण्डों में जकड़े हुए थे । अतः नवाब साहब कुछ आगे की ओर झुक गये और उन्होंने घुटना अड़ाना प्रारम्भ कर दिया । अब मैं परीशान था । अतः मैंने स्वयं नवाब साहब से कहा, कि जरा पीछे ही रहिये, नहीं तो डर है कि एक्का दाबू हो जायगा । लेडी हिम्मतकदर अब दबाव के नाम से काँपती थी । उन्होंने भी नवाब साहब से कहा कि पीछे ही रहिए । अब एक्के का भार सम रहता था । थोड़ा भी दबाव होता हो मैं नवाब साहब का ध्यान रूमालों की कमज़ोरी और गाँठों की ओर दिलाता । और नवाब साहब फिर ठीक से बैठ जाते, न बैठने पर बेगम साहिबा शोर मचातीं ।

कोई कहने योग्य बात न थी, कि एक साधारण झटके पर लेडी हिम्मतकदर चीखीं, और साथ ही सड़क पर से बासी गोबर का एक टुकड़ा पहिये के साथ उड़कर उनकी आँख में लगा । वे चीखीं वास्तव में इस कारण से थीं, कि हाथ में डंडे की फाँस लग गई थी । एक नहीं दो-दो आपदाये बीतीं, उनकी आँख में गोबर भी पड़ गया । एक्का रोका गया । फाँस निकाली गई और आँख साफ की गई । लेडी हिम्मतकदर के हाथ डंडा पकड़े-पकड़े लाल हो गये थे और वे कह रही थीं, कि मेरा कन्धा उखड़ा जा रहा है । लेकिन क्या करें, विवश थीं, कोई वश ही न था ।

×

×

×

हम इसी दशा में चले जा रहे थे। सड़क धीरे-धीरे खराब आती जा रही थी। और फिर थोड़ी देर बाद ऐसी आई कि सावधानी से बैठना पड़ा। लेडी हिम्मतकदर एक्के के 'दबाव' को सोच-सोचकर काँप उठती थीं। और नवाब साहब को सूचना पर सूचना मिलती थी कि पीछे हटे रहो। एक्कावाला भी प्रसन्न था, कि एक्का हल्का चल रहा है। लेकिन यह कदाचित् लेडी हिम्मतकदर को मालूम न था कि एक्के पर बैठना दो दशाओं में भय से खाली नहीं। या तो 'दबाव' जब आगे को बाँझ होगा, और या फिर 'उलार' जब पीछे को होगा। मैं चूँकि एक्क के आगे बैठा था और एक्के के 'दबाव' का मज़ा लूट चुका था। इसलिए एक्केवान से लेकर नवाब साहब तक, प्रत्येक का यही प्रयत्न था, कि एक्का उलार रहे।

×

×

×

रूमालों की गाँठ पर 'उलार' एक्के का ज़ोर बुरी तरह पड़ रहा था। और चूँकि आगे बैठनेवाले को 'उलार' एक्के में कम डर होता है, अतः मैं चुप था। लेडी हिम्मतकदर जानती ही न थीं, कि 'उलार' क्या चीज़ होती है? नवाब साहब बेगम साहिबा को प्रसन्न करने में अधिक प्रयत्नशील थे। और एक्केवाले के लिए 'उलार' और 'दबाव' प्रतिदिन का विषय ठहरा। परिणाम इसका यह हुआ कि एक असाधारण गड़हे में झटका लगा। रूमालों ने तड़ाखे भरे। लेडी हिम्मतकदर चीखीं। लेकिन वे बिल्कुल ठीक थीं, क्योंकि दोनों बम ऐन्टी एयर क्रेफ्टगन (वायुयान ध्वंसिनी तोप) की नालों की उठ गये। एक्का यदि आदमी होता तो बिल्कुल 'चित्त' गिरता। बुद्धिमान एक्केवान ने एक्के की पीठ पर नीचे एक ओर एक्के का दाहिना बम किसी विचार से आधा गज बड़ा बनवाया था, जिसे प्रकट रूप में व्यर्थ समझ कर छोड़ दिया था। वास्तव में यदि सच किये तो यह थ्योरी आफ बैलेन्स अथात् तोल-सिद्धान्त का विवरण

था, जिसे दूसरे शब्दों में पूरब की ओर “उलरेठा” कहते हैं। वास्तव में यदि यह कहीं न होता तो एक्का अपनी अज्ञानता के सामान सहित अथात् हम लोगों के सिर के बल (अर्थात् छतरी के बल) चित्त गिरता ।

लेकिन फिर भी भारकस ने एक्के को एक भटके के साथ रोक लिया । लेकिन दोनों बमें जो हवा में लटक पड़ीं तो इसका परिणाम यह हुआ कि एक्कावाला लुढ़ककर लेडी हिम्मतकदर की गोद में गिरा और अपनी इस सम्मान-वृद्धि से इस प्रकार घबड़ाया कि मेरी गर्दन पर से होता हुआ निकल कर पहिये के पास गिरा । मैं लम्बा-लम्बा एक्के पर लेट जाने पर विवश हुआ और एक्केवान के बैठने की जगह, जो एक खाना होता है, उसका ढकना खुल जाने के कारण तम्बाकू मिली हुई रेत, फाँकने के अतिरिक्त मेरे मुँह पर हथौड़ा, चिलम, और दूसरी बुरी चीज़ें लगाम के सहित गिरीं, जिसे एक्केवान छोड़ गया था ।

नवाब साहब ने विचित्र ही क्रिया की । या तो वह गिड़गिड़ाकर कूदे थे, नहीं तो फिर एक्के की छतरी पर चढ़ने का प्रयत्न अवश्य ही किया था । कुछ भी हो, वे छिपकली की तरह पट से पहिये के बराबर धूल में गिरे और इस चौकड़ी के साथ उठे हैं कि कहने में नहीं आ सकता ।

लेडी हिम्मतकदर ज्यों की त्यों चीखे लगा रही थीं । और एक्के की रस्सियों और डण्डों को पूरी शक्ति से व्यर्थ इस प्रकार पकड़े हुए थीं, कि जैसे गिर ही जायँगी ।

एक्केवाले के पास पर्याप्त बहाना था । जैसे साहब यह तो होता ही रहता है (कोई असधारण बात नहीं) साज पुराना हो गया है.....कहीं रुमाल से काम चलता है.....नया साज अब

के मेले के मजदूरी से खरीदूँगा घोड़ा छः सेर दाना खाता है, दाम ही नहीं बचते । इत्यादि-इत्यादि ।

X

X

X

एकके में भी जगह-जगह खजाने होते हैं । न जाने किन-किन स्थानों को एककेवाले ने कुरेदा और कहाँ से रस्ती के बहुत से टुकड़े निकालकर साज़ को फिर ठीक किया और राम-राम करते हुए हम फिर चले । लेडी हिम्मतकदर अब डरी हुई थी, उनकी समझ में न आता था कि अब किस ओर जोर दें । आगे को भुके तो दबाव का डर और पीछे रहें तो उलार का भय । विचित्र स्वर में उन्होंने कहा, “एकका बड़ी भयानक सवारी है । कभी कोई मर तो नहीं जाता !”

एककावाला बोल पड़ा, “साहब जिसकी आती है वह इस बहाने से भी जाता है ।”

नवाब साहब ने ज़ोर से डपटकर कहा” चुप बे.....ना
(बड़बड़ाने लगे)

X

X

X

“पक्की सड़क, पक्की सड़क” यह नारा हम लोगों ने पक्की सड़क को दूर ही से देखकर इस प्रकार ऊँचा किया, जिस प्रकार क्रिस्टोफर कोलम्बस के साथियों ने ज़मीन को देखकर ‘ज़मीन ज़मीन’ कहकर चिल्लाया था । थांडी ही देर में हम ज़ोर से पक्की सड़क पर खड़खड़ाते जा रहे थे । अब हमें ज्ञात हुआ कि एकके पर हम मानों सिर के बल बैठे हैं । बे कमानी के एकके की खड़खड़ाहट भी विचित्र चीज़ है । कच्ची सड़क की मिट्टी; और धूल इत्यादि साफ-साफ कपड़ों पर से झड़ गई । नवाब साहब वाली कील उनके एक जगह न गड़कर सारी रान में, लम्बाई-चौड़ाई तक, गड़ रही थी । एककेवाले को अबसर मिला । “सब बैठा” कह के उसने घोड़े को रस्ती की लगाम से अच्छी तरह भाड़ दिया और घोड़ा कच्ची सड़क की कठिनाइयों से छुट्टी पाकर

पक्की सड़क पर अपने चमत्कार दिखाने लगा । वह तेज़ चला और पिटा । खूब तेज़ चला, और ! खूब पिटा । एक्केवाले को इसकी चिन्ता नहीं कि अश्व तेज़ चल रहा है, घोड़े को न मारना चाहिए । वहाँ तो नियम है कि मारे जाव । घोड़ा भी कहता होगा कि भगवान् ! यह कैसा अग्न्याय है, चितना ही तेज़ दौड़ता हूँ, मारा जाता हूँ । और कदम धीमा करता हूँ तो मारा जाता हूँ । निदान जानवर फिर जानवर है । लेकर बेतहास दौड़ा और उधर इसी अनुपात से उस पर मार । “हूँ हूँ” मैं कहता ही रहा, और, लेडी ! हिम्मतकदर का चीखें अलग, कि इतने में कुशल से दाहिने पहिये का कील, इसी बिजली की सी गति की अवस्था में, निकल गई और पहिया निकलकर यह जा, वह जा ।

भगवान ही बचाये, मोटर की भयानकता तो कोई चीज़ नहीं । घोड़ा दौड़ने में ही करवट के बल गिरा, और एक्कावाला आधा उसके नीचे, उड़कर दूर गिरा । नवाब साहब एक्के के पिछे गिरे और बेगम साहिबा स्वयं एक्के के दाहिनी ओर । एक्कावाला चोट के कारण और लेडी हिम्मतकदर तो भयायात के कारण मूर्छित हो गई । नवाब साहब का कूल्हा उतर गया और मेरी दो पसलियाँ टूट गई । सब अपनी अपनी जगह पड़े थे । घोड़ा बैठा हुआ था, मैंने आँखें झपकाकर देखा । नवाब साहब लँगड़ाते हुए उठे और अपनी बेगम साहिबा को सँभाला । एक विचित्र पराजय और विवशता की परिस्थिति थी ।

भगवान बड़ा दयालु है, उसने दस-पन्द्रह मिनट बाद ही एक मोटर भेज दिया, एक अँगरेज़ उस ओर जा रहा था, जिस ओर से हम आ रहे थे । उसने सबको बीन-बटोर कर सीधा अस्पताल पहुँचाया । एक्केवाले का एक्का और घोड़ा वहीं रह गया था और खो गया । नवाब साहब ने जब से उसको अपने मोटर पर रख लिया

है। कभी-कभी मिलता है तो उसकी सूरत देखकर नवाब साहब, मैं, और लेडी हिम्मतकदर, सब को हँसी आती है।

नवाब साहब और उनकी लेडी साहिबा तो फिर कभी एक-दूसरे पर न बैठीं। लेकिन मैं अब भी बैठता हूँ। माशा अल्लाह, सवारी खूब है !

चिल्लाकशी

हम तहसीली स्कूल में उर्दू मिडिल में पढ़ते थे और हमारे पूज्य पिता जी की कामना थी कि किसी तरह हम जल्दी से मिडिल पास करके पटवारी हो जायँ और हमारा विवाह कर दिया जाय । मगर हमारा भाग्य भी विचित्र था । दो वर्ष से बराबर फेल हो जाते । लोग हमको गब्बर कहते थे । कोई कहता था कि हमारे दिमाग में भुस भरा है, कोई कहता था कि गोबर भरा है । कोई कहता था कि हम धिलकुल उल्लू हैं । पर तनिक भी इन्साफ़ से देखा जाय तो हमारी कुछ ख़ता नहीं थी । अगर हम सबकुछ याद करें और फिर भी भूल जायँ तो हम उल्लू कैसे हुए ।

हमारे स्कूल के हेडमास्टर मुन्शी रामसहाय कायस्थ थे और बड़े ही ख़रतनाक आदमी थे । हमको अच्छी तरह याद है कि जब हमारे पिता जी ने हमें उनके हाथों सौंपा तो ये शब्द कहे थे कि—“मुन्शी जी, इस लड़के की हड्डी-पसली हमारी और गोश्त और चमड़ा तुम्हारा, पर लड़का लायक निकले ।” स्पष्ट है कि इन ख़तरनाक मुन्शी जी को हमें मारने-कूटने में क्या संकोच हो सकता था जब हमारे मांस और चाम की उनके नाम इस प्रकार रजिस्ट्री कर दी जाय ।

हर साल मेरे फेल हो जाने पर मुन्शी जी मुझे कूट-कूटकर ठीक करते थे, लेकिन सबसे बड़ी विपत्ति फेल होने से मेरे ऊपर यह आती थी कि मेरा विवाह केवल इसी कारण रुका हुआ था कि मैं फेल हो जाता हूँ और धीरे-धीरे मैं अपनी अयोग्यता के लिए विख्यात हो

रहा था और मुझे शङ्का हो रही थी कि कहीं यह ख्याति खतरनाक रूप न धारण कर ले ।

मुझे सबसे अधिक भय इस बात का था कि मेरी प्रिय मँगेतर की इसी गड़बड़ और अयोग्यता के चक्कर में कहीं दूसरी जगह शादी न हो जाय । क्योंकि मुझको फिर ऐसी कन्या मिलनी असम्भव थी । यह लड़की मेरे गाँव के सबसे बड़े पट्टीदार की लड़की थी जो मेरे पड़ोसी थे, और फिर सबसे बड़ी बात यह कि मेरे साथ की खेली हुई थी और दोनों के हृदय एक हो चुके थे । जब मैं सोचता था कि इस फेल होने के कारण मेरी मँगेतर छिन जायगी तो मेरा, चिन्ता और दुख के मारे बुरा हाल हो जाता था ।

(२)

परीक्षा में मैं तीसरी बार बैठा था । आप स्वयं इससे अनुमान कर सकते हैं कि मेरे पास होने का कहाँ तक विश्वास था, कि नकशा बिगाड़ दिया था और फिर मुझसे बचन ले लिया गया था, कि यदि कहीं इस बार फेल हो गया तो मुझे मार डाला जायगा । भय के मारे मेरा यह हाल था कि मैं स्वयं कहता था कि यदि जीवित रहना है तो पास होना ही पड़ेगा । सारांश यह कि मुन्शी जी को और मेरे पिता जी को मेरे पास होने की बहुत कुछ आशा थी ।

इम्तहान के नतीजे का दिन आया तो मेरे मन में एक अजीब उमङ्ग और गुदगुदी थी । मैं सोच में मग्न था और स्वयं को दूल्हा बना हुआ देखता था, कि जब मेरे पिता जी के मिलनेवाले मुझे बधाई देंगे तो मैं मारे शर्म के क्या उत्तर दूँगा । गरज कल्पना हमको कहीं से कहीं उड़ाये लिये जा रही थी ।

किसी न किसी तरह गज़ट हाथ में आया और मैंने काँपते हुए हाथों से उसको खोला । मेरे स्कूल का नाम मेरी नज़र के सामने था और मैं तेजी से अपना नाम सफल परीक्षार्थियों की सूची में खोज

रहता था। मेरे पिता जी मेरे कन्धे के पास मुँह किये खड़े थे और चूँकि उनको मेरी सफलता की पूर्ण आशा थी अतः उनकी बाँछें अभी से खिली हुई थीं।

मैंने मन में कहा—“हाय !” मेरा कलेजा धक-से हो गया। आँखों तले आँधेरा छा गया। जल्दी से आँखों को मला और खूब गौर से अपने नाम को फिर से देखा, लेकिन वहाँ भला कहाँ मिलता। बदन काँपने-सा लगा, हाथ काँपने लगा और गजट मेरे हाथ से छूटकर धरती पर गिर पड़ा। मेरे पिता जी ने क्रुध होकर कहा—“अरे ! क्या तू फिर फेल हो गया ?”

मैं भला इसका क्या उत्तर देता। चुप रहा। पर मेरे पूज्य पिता जी फट पड़े। क्रोध के मारे उनका बुरा हाल हो गया और उन्होंने जूता लेकर जो मेरी मरम्मत करना शुरू की है, तो मुझे लुटा-लुटा और बिछ-बिछा दिया और इसके बाद मुझे बैलों के चारे की कोठरी में बन्द कर दिया। मैं कोठरी में बिना खाये पिये पड़ा रहा और दिन भर आने-जानेवाले मुझे धिक्कारते रहे। रात गये माता जी ने मुझे कैद में रिहा किया, तब कहीं जाकर खाने को मिला।

×

×

×

आठ-दस दिन तक मेरे ऊपर चारों ओर से धिक्कार और फटकार की वर्षा होती रही, यद्यपि मुझे ऐसी फ़िज़ूल बातों की तनिक भी परवाह नहीं थी, किन्तु मुन्शी रामसहाय का धड़का लगा हुआ था कि वे क्या कहेंगे। मुन्शी जी से मेरे पिता जी और चाचा जी भी डरते थे, क्योंकि वे इनके भी गुरु रह चुके थे और बहुत मारा था।

मैं मन में सोच रहा था कि मुन्शी जी के रूप में जो संकट आने-वाला था वह टल गया और वे अब नहीं आयेंगे, कि एक दिन की बात सुनिश्च। सुबह आठ बजे होंगे और मैं बाहर बैठा मुँह धो रहा

था । एकदम से एक इक्का आकर रुका । मैंने आँख उठाकर देखा और यमदूत को देखकर मेरे देवता कूच कर गये । मुन्शी रामसहाय बजाय इसके कि अपना बिस्तर और लोटा इक्के पर से उतरवाते या मेरे पिता जी के सलाम का जवाब देते, बस चील की तरह मेरे ऊपर झपटे । “मुन्शी जी !” रोते हुए मेरे मुँह से निकला और मैं हाथ जोड़कर खड़ा हो गया, किन्तु वहाँ भला दया कहाँ ? मुन्शी जी ने एक लकड़ी से मेरी मरम्मत शुरू की ।

“फिर फेल होगा, फिर फेल होगा ?” की आवाज़ पर मैं धुनका जा रहा था और तड़पता फिरता था, किन्तु मुन्शी जी मारना बन्द न करते थे । जब मेरा पिटते-पिटते बुरा हाल हो गया तो मुन्शी जी ने हाथ रोका और लकड़ी लिये सीधे मेरे पिता जी की ओर उनको “उल्लू, गधा” कहते हुए इस प्रकार बड़े कि मुझे विपत्ति में भी एक प्रसन्नता और आशा की झलक दिखाई पड़ने लगी । किन्तु उनके साथ मुन्शी जी ने रिआयत की और उनको मारा नहीं, पर कहने के मामले में कोई बात न उठा रखी । सारांश यह कि मेरे पिता जी को उन्होंने मारते-मारते छोड़ा और दरअसल वे बाल-बाल बचे । क्योंकि मुन्शी जी मेरे फेल होने का सारा दोष उन्हीं के सिर थोप रहे थे । पिता जी के बाद माता जी का नम्बर आया और उनको भी मुन्शी जी ने खूब बुरा-भला कहा ।

दो तीन दिन मुन्शी जी मेरी छाती पर कोदों दलते रहे और इस बीच कभी चाँटा, कभी थप्पड़ और कभी जूता मेरे ऊपर पड़ता रहा । जब मुन्शी जी की वापसी के लिए इक्का आया तब जाकर मेरी जान में जान आई । चलते समय मैंने अपने ज़ालिम गुरु के चरण छुए और वे रवाना हुए । यह महाशय दरअसल अजीब आदमी थे । परीक्षा-फल प्रकाशित होने के बाद सभी विद्यार्थियों के

यहाँ का दौरा करके फेल होनेवालों का यही हाल करते थे । गरज मुझे मारने ही के लिए आप पधारे थे ।

(३)

मेरी समझ में न आता था कि क्या तरकीब करूँ कि पास हो जाऊँ । अब चौथी बार इम्तिहान की तैयारी करनी थी । वही विषय और वही पुस्तकें थीं । रह-रहकर सोचता कि या खुदा, क्या करूँ जो पास हो जाऊँ ।

एक दिन की बात है कि मैं इसी सोच में पड़ा अपने भाग्य को रो रहा था कि मेरे घर और पड़ोस की सब स्त्रियाँ किसी दूसरी जगह एक 'मृत्यु' में चली गईं । मैं छत पर चढ़ गया और अपनी दीवार पर चढ़कर दूसरे मकान की छत पर धीरे से कूदा और इस तरह कई छूते लाँघकर अपनी भावी सुसराल पहुँचा । वहाँ देखा तो मेरी प्रिय मंगेतर बैठी कुछ सी रही थी । मैंने सीटी बजाकर अपनी ओर आकर्षित किया । उसने मुझको मुस्कराने हुए हाथ से संकेत किया और दौड़कर दरवाज़े की कुन्डी लगा दी । मैं झट से नीचे उतर गया और बिना कुछ सोचे-समझे एकदम से उसके हाथों में मुँह छिपाकर रोने लगा । सबसे पहले तो उसने मेरे पिटने पर दुःख प्रकट किया और फिर सान्त्वना देती हुई, मेरी यह कहकर हिम्मत बढ़ाई कि अब की बार अवश्य पास हो जाओगे । मैंने कहा कि अब मेरे बस की यह बात नहीं कि इस मुहिम को सर कर सकूँ ।

बड़े-बड़े उपाय सोचे किन्तु परीक्षा से छुटकारा पाने की कोई तरकीब न समझ में आई । किसी ने कहा है कि दो दिल एक होकर पहाड़ को काट सकते हैं । दो दिमाग लड़ते और कोई उपाय न सूझता यह कैसे हो सकता था । सोचते-सोचते एकाएक मेरी भावी पत्नी को ख्याल आया और उसने वह तरकीब सुझाई कि मैं उछल पड़ा । उसकी माँ को शहर के एक शाह साहब ने एक मन्त्र बताया था

जिसके बल पर वह हारा हुआ मुकदमा जीत गई थी। मैंने शाह साहब का पूरा नाम और पता याद किया और मन में ठान लिया कि अवश्य उन शाह साहब से मिलूँगा। उसका और मेरा दोनों का विश्वास था कि शाह साहब के एक ही मन्त्र में इम्तहान की समस्या हल हो जायगी। थोड़ी देर के बाद मैं प्रसन्नचित्त वहाँ से बिदा हुआ। अब मुझे पूर्ण विश्वास था कि मैं अगले साल अवश्य पास हो जाऊँगा।

(४)

शाह साहब ने सबसे पहले तो मुझे अपना चेला बनाया और इस बखेड़े में मेरे पाँच रुपये खर्च हुए जो चलते समय मेरी मँगोतर ने दिये थे, क्योंकि वह रईस की बेटी थी और मेरे पास कानी कौड़ी भी न थी। जब मैंने शाह साहब से अपने संकट का हाल कहा तो उन्होंने मुस्कराकर कहा—“अभी क्या जल्दी है, जब इम्तहान करीब आये तो हमारे पास आना।

×

×

×

साल भर हमारा बुरी तरह बीता। मुन्शी जी बात-बात पर मुझे मारते थे और हड्डी-पसली एक किये देते थे। चूँकि शाह साहब के पास जब मैं जाता था तो अपनी सफलता का विश्वास और भी दृढ़ हो जाता था। अतः स्वभावतः पढ़ने की ओर ध्यान कम जाता और इसका परिणाम यह होता कि और भी पिटता। इस वर्ष मैं आवश्यकता से अधिक पिट रहा था। यहाँ तक कि तङ्ग आकर मुझे शाह साहब से, पिटने से बचने का जन्त्र लेना पड़ा। इस जन्त्र ने मुझे पढ़ने की ओर से और भी उदासीन कर दिया और परिणाम यह हुआ कि इतना पिटने लगा कि मैं समझा कि जन्त्र शाह साहब ने कहीं भूल से उलटा तो नहीं दे दिया, अतएव जन्त्र खोलकर अलग

रक्खा और कुछ पढ़ने में अधिक मन लगाने लगा, तब कही जाकर मार पड़नी कम हुई ।

जब मेरे इस्तहान के दो महीने रह गये तो मैं शाह साहब के पास गया । उन्होंने मुझसे कहा कि तुम चालीस दिन का जलाली चित्ला खींचो, अर्थात् चालीस दिन तक प्रंतो को वश में करने के लिए कड़ा मन्त्र जपो । चित्ले के विषय में मुझे समस्त बातों का निर्देश दिया । यह चित्ला एक अकेले मकान में खींचा जाने को था और इसके लिए मुझे बीस रुपये की आवश्यकता पड़ी जो मैंने अपनी मँगेतर से लिये ।

मैं घर से ऐसा गायब हुआ कि गाँव भर में सिवा मेरी मँगेतर के किसी को भी पता न चला कि मैं क्या हुआ । मैंने शहर में जाकर सिर घुटाया, एक छोटा-सा घर एक सुनसान-सी गली में किराये पर लिया और चालीस दिन की खुराक के लिए जौ पिसवाकर रख लिये । इंधन भी काफ़ी रख लिया । चालीस दिन तक मैं जौ की रोटी के अतिरिक्त और कुछ न खा सकता था । एक भिश्ती को मैंने लगा लिया और तय कर लिया कि वह तीसरे दिन पानी भर जाया कर और शुक्र के दिन नई बुला लाया कर, क्योंकि इस बीच सिर का घुटा होना अत्यन्त आवश्यक था । मैं चित्ला शुरू करने से पहले शाह साहब से एक बार और मिला और उन्होमें मुझे दोबारा सब निर्देश देने के बाद कुछ प्रंतों का हाल भी सुनाया ।

X

X

X

मैं बिस्मिल्लाह करके घर में घुसा और अपने हमराज भिश्ती को ताला ओर कुझी दी कि बाहर से बन्द करके ताला चढ़ा दे जिसमें किसी को सन्देह न हो और लोग यही समझे कि मकान खाली है । भीतर पहुँचकर मैंने ज़मीन साफ़ की और उसको लीपा-पोता । फिर साफ़ चूने से तीन धेरे अर्थात् तीन कुन्डलियाँ बनाईं । एक सबसे

छोटी कुण्डली के अन्धर मैं नहा-धोकर सिर झुकाकर बैठ गया और 'या बुद्ध' का मन्त्र जपना शुरू कर दिया ।

x

x

x

मेरा मन्त्र बड़े मज़े में जारी था । तीन दिन की रोटी मैं एक दिन पका लेता, दिन और रात मेरा मन्त्र के जाप में बीतता । जब नींद आती तो उस घेरे के भीतर ही सो जाता । हर समय पवित्र रहता और नियत समय और आवश्यकता के अतिरिक्त घेरे से बाहर न निकलता था । भिखी आता और चुपचाप पानी भरकर चला जाता और नाई भी इसी प्रकार सिर मूँड़ कर चला जाता । बात-चीत की कड़ी मनाही थी और मैं संकेतो ही से काम लेता था । दिनों के गिनती के लिए प्रतिदिन उठकर दीवार पर कोयले का एक चिन्ह खींच देता था ।

जैसे-जैसे दिन बीतते जाते थे, मेरा हृदय प्रकाशित और आलोकित होता जाता था । प्रारम्भ में तो दो तीन दिन मुझे डर भी लगा, क्योंकि चारों ओर घोर सन्नाटा होता था और मैं बिलकुल अकेले कड़ुवे तेल के दिये की मद्धिम ज्योति में अपना मन्त्र जपता रहता था । किन्तु अब भय बिलकुल न लगता था । बल्कि रात की निस्तब्धता मन को और भी दृढ़ बनाती हुई प्रतीत होती थी ।

अभी तक मुझसे किसी प्रेत का सामना नहीं हुआ था, किन्तु मैं अब इसके लिए भी तैयार था । एक दिन एक छिपकली इस धृष्टता के साथ मेरे बिलकुल निकट आई कि मुझे कुछ सन्देह हुआ, क्योंकि शाह साहब ने मुझसे कह दिया था कि प्रेत जानवरों का रूप धारण करके भी आ सकते हैं अतः मैंने जैसे ही एक मन्त्र पढ़कर उसी ओर फूँका तो उस छिपकली-रूपी प्रेत को भागते ही बन पड़ा ।

(५)

पाठकों को मालूम ही है कि मैं घर से इस तरह गायब हुआ था

जैसे गधे के सिर से सींग । मेरे लापता हो जाने पर मेरे पिता जी, चाचा जी और मुन्शी जी ने बहुत कुछ ढूँढ़ा किन्तु न पाया । मुन्शी जी ने सोच रक्खा था कि जब इम्तहान को दो महीने रह जायँगे तो मेरे ऊपर विशेष ध्यान दिया जायगा । मेरी माता जी का एक ही सप्ताह में बुरा साल हो गया और उन्हें पूर्ण विश्वास हो गया कि मुन्शी जी की सख्ती से तङ्ग आकर मैंने आत्म-हत्या कर ली है, अतः उन्होंने रो-रोकर घर सिर पर उठा लिया ।

मुझसे शाह जी ने कहा था कि सम्भव है तुमको चिल्लाकशी के बीच भूत-प्रेत सतायें । उन्होंने कहा था कि प्रत दिन को भी आ सकते हैं और रात को भी । कभी तो वे जानवरों के वेश में आते हैं और कभी मित्रों तथा सम्बन्धियों का रूप धारण करके आते हैं और तरह-तरह की हरकतें करते हैं । उनका मतलब यह होता है कि वह किसी प्रकार मन्त्र जाप में बाधा डालें । कभी वह धमकियाँ देते हैं और कभी डराते-धमकाते हैं, किन्तु हानि वह बिल्कुल नहीं पहुँचा सकते, उस समय तक, जब तक कि घेरे खिंचे हों । उन्होंने यह भी कहा कि प्रेत कई प्रकार के होते हैं । जो निम्नकोटि के होते हैं और बुरी-बुरी शक्लें बनाते हैं, वह तो तीन घेरों में से एक के भीतर भी नहीं आ सकते । आना तो बड़ी बात है, कहीं लकीर पर उनका पैर भी पड़ जाय तो जलकर भस्म हो जाते हैं । दूसरी श्रेणी के वह हैं जो पहले और दूसरे घेरे में तो आ सकते हैं किन्तु तीसरे घेरे में नहीं आ सकते । लेकिन प्रथम श्रेणी के जो प्रेत हैं वे चूँकि स्वयं विद्वान् होते हैं और कुछ उनमें से चिल्ला भी खींचे हुए होते हैं, अतः वे सगे-सम्बन्धियों का रूप धारण करके आते हैं और कभी-कभी वे तीसरे घेरे में भी पाँव रख देते हैं । ऐसी अवस्था के लिए शाह साहब ने मुझे एक दूसरा मन्त्र बताया था कि जब ऐसा हो तो तीसरे घेरे के

अन्दर अपने चारों ओर एक सौथा घेरा उड़ली ही से खींचकर मन्त्र पढ़कर प्रेत की ओर फूँक देना । और वह चले जायेंगे ।

×

×

×

मेरा मन्त्र अब समाप्त होने ही को था और महीने भर से अधिक हो चुका था । सिवाय उस प्रेत के जो मेरे पास छिपकली के रूप में आया था और कोई भूत-प्रेत नहीं आया ।

शुक्रवार का दिन था । मैंने उठकर दीवार पर उन्तालीसवाँ रेखा खींची । कल चालीसवाँ दिन चिल्ले की समाप्ति और कामना का था । यानी चिल्ला समाप्त होने पर मैं जाँ भी कामना करूँगा, वह पूरी होगी । पास होने की कामना के अतिरिक्त अब मैं यह सोच रहा था कि क्या न कोई दूसरी कामना भी उसी में सम्मिलित कर लूँ । परन्तु फिर यह सोचा कि शाह साहब ने कहा था कि केवल एक ही कामना के लिए चिल्ला खींचा जाता है और यद्यपि कई कामनायें एक साथ मिला लेने में विशेष हर्ज नहीं, किन्तु आशङ्का अवश्य होती है । क्योंकि कामना एक ही पूरी होती है । बहुत सोच-विचार के बाद मैंने निश्चय किया कि मैं दस कामनाओं की पूर्ति के लिए भगवान् से प्रार्थना करूँगा । एक तो अपने पास हाने की और दूसरी अपनी मँगेतर से विवाह की । चाहे कोई भी पूर्ण हो, बात एक ही है ।

गरज मैंने उस दिन सिर घुटवाया और नहा-धाँकर प्रसन्नचित्त अपना मन्त्र-जाप शुरू कर दिया ।

दिन चढ़ रहा था और वास्तव में इसी समय भगवान् चिल्ला खींचनेवालों की प्रार्थना सुनने की ओर ध्यान देते हैं और मन्त्र पूरे बग से पढ़ा जाता है । ठीक दोपहर का समय हो गया । मैं अपने मन्त्र-जाप में इतना तन्मय था कि तन-बदन की सुध नहीं थी । इस सन्नाटे की हालत में एक दम से मेरे कानों में आवाज़ आई “क्यों बे यह

क्या ढकोसला !' मैंने छत की ओर देखा और जब कुछ न पाया तो मेरे कान खड़े हो गये। मन में कहा कि प्रेत आ गये, फिर आवाज़ आई। अब क्या देखता हूँ कि सामने मकान की दीवार पर मुन्शी रामसहाय खड़े हैं। मैं जान गया कि प्रेत आ गये और मैंने माला तेजी से फेरना शुरू किया और बजाय उत्तर देने के मैं दीवार की ओर देख रहा था। इतने में क्या देखता हूँ कि पिता जी भी दीवार पर आ गये। मैं बराबर मन्त्र-जाप कर रहा था, पर मैं मन में अवश्य हँस कि ये प्रेत मुझे उल्लू बनाते हैं। भला ये मेरा कर ही क्या सकते थे। मैं जानता था कि प्रेत प्रथम श्रेणी के हैं जो आश्चर्य नहीं कि तीसरे घेरे में धुस आये। मुन्शी रामसहाय वृद्ध आदमी थे और जब उन्होंने तीन बार और डाँटा और मैंने कुछ न सुना तो वे दीवार पर चलकर पाखाने के पास पहुँचे और वहाँ से उतरने लगे। मैंने मन में कहा कि मुन्शी रामसहाय का भेष तो इस प्रेत ने निस्सन्देह बड़ी सफलता के साथ बदला है, यहाँ तक कि आवाज़ भी बिलकुल मिला दी है, पर इसने यह न सोचा कि भला एक वृद्ध आदमी किस तरह इतनी तेज़ी से दीवारों पर चल सकता है। सारांश यह कि ये दोनों प्रेत जो मेरे पिता जी और मुन्शी रामसहाय का वेष बदले हुए थे, पाखाने में से उतरकर मेरे निकट आ खड़े हुए, किन्तु मैं उसी तरह मन्त्र के जाप में तन्मय था। मैं बड़े गौर से मुन्शी रामसहाय-रूपी प्रेत को देख रहा था जो कोई गड़बड़ी करने की तैयारी करते हुए दूसरे प्रेत को देखकर हँस रहा था। पर मैं मन में कह रहा था कि आओ, मैं दोनों के लिए तैयार हूँ।

मेरे देखते-देखते मुन्शी जी रूपी प्रेत ने एकदम से हँसना बन्द किया और जोर से डपटकर "अबे पाजी" कहते हुए घेरे में डग रस दिया। फिर दूसरे घेरे में पाँव रखा। मैं तुरन्त समझ गया कि यह

अवश्य ही प्रथम श्रेणी का चिल्लाकश (सिद्ध) प्रेत है और तीसरे घेरे में भी घुस आयेगा । मैंने फुर्ती से उझली से चौथा खास घेरा बनाया और विशेष मन्त्र पढ़कर उस धृष्ट प्रेत की ओर जो मुँह बढ़ाकर फूँका तो मेरे मुँह पर इस ज़ोर का एक चाँटा पड़ा कि मेरा मुँह फिर गया । मैं कुछ सोचने भी न पाया था कि मेरा कान उस भयानक प्रेत के हाथ में था । आरी ताज़ी घुटी हुई खोपड़ी पर मुन्शी रामसहाय का जूता बज रहा था । 'तड़ातड़, तड़ातड़' दो-तीन जूतों तक तो मैं यही समझा कि यह प्रेत है और मैंने मन्त्र का जाप बन्द नहीं किया, पर जूता इस ज़ोर का पड़ रहा था कि तुरन्त ही वास्तविकता प्रकट हो गई । अर्थात् यह कि वास्तव में असली रामसहाय बड़ी बुरी तरह मेरा सिर गज्जा कर रहे थे और बराबर यह कह रहे थे कि—'तूने मुझे बदनाम किया, तू इम्तहान के दिनों में भाग आया, यह सब तेरे नालायक बाप का कुसूर है, आज तुझको ज़िन्दा न छोड़ूँगा । आखिर यह तू क्या कर रहा था ? इत्यादि, इत्यादि ।

मुझे भिस्ती का नाम और पता बताना पड़ा जिसके पास कुर्झी थी । बाहर जो इक्केवाला खड़ा था, वह भिस्ती के पास से कुर्झी लाया और हम लोग इक्के पर बैठकर अपने गाँव की ओर चले । जब मार की पीड़ा कुछ कम हुई तो मुझको अवकाश मिला कि अपने भाग्य को रोऊँ । यह तो मुन्शी जी को बता ही चुका था कि यह मन्त्र इम्तहान में पास होने के लिए पढ़ा जा रहा था । अब मैं अपने मन में यह सोच रहा था कि भला मुझमें बड़ा अभाग कौन होगा कि जब सिद्धि प्राप्त होने में केवल एक दिन रह गया तब मुन्शी जी ने आकर यह सितम ढाया । मेरा चिल्ला बीच ही में टूट चुका था और मुझे भय था कि कहीं मेरा जलाली मन्त्र अपूर्ण रह जाने के कारण मेरे ऊपर इस मार के अतिरिक्त जो पड़ चुकी थी, कोई

और विपद न लाये । क्योंकि मुझसे शाह साहब ने कहा था कि मन्त्र अपूर्ण रह जाता है तो बहुधा लौट पड़ता है और फिर अनेक कष्ट देता है ।

मैं घर पर पहुँचा तो मेरी माता जी ने मुझे गले से लगाया और खूब रोई । उन्होंने सब हाल सुनकर कहा कि तूने मुझे क्यों न बताया, मैं तेरे लिए इससे बढ़कर मन्त्र पढ़वा देती ।

पर मुन्शी जी का यह हाल था कि दाँत पीस-पीसकर मेरे ऊपर दौड़ पड़ते थे और मारते थे । अब इम्तहान को केवल तीन दिन रह गये थे और इन तीन दिनों में मुन्शी जी ने मेरे ऊपर वह अत्याचार किये कि मुझे विश्वास हो गया कि अवश्य ही मेरा मन्त्र मुझ पर लौट पड़ा और अब मेरी कुशल नहीं । गरज़ जो कुछ भी इस अल्प समय में सम्भव था, वह मुन्शी जी ने किया और मुझसे इम्तहान दिलवाया । परीक्षाफल प्रकाशित हुआ । अब तक तो मैं केवल गणित में फेल हुआ करता था, किन्तु इस बार प्रत्येक विषय में फेल रहा ।

मुन्शी रामसहाय का इक्का समय पर पहुँचा और उन्होंने उतरते ही मुझे मारते-मारते अधमरा करा दिया और फिर स्वयं बैठकर रोने लगे । मेरे पिता जी ने जब अपने पूज्य गुरु जी को रोते हुए देखा तो उनकी आँखों में खून उतर आया । “आज तुझे मार डालूँगा ।” यह कहकर वे मेरे ऊपर टूट पड़े और मारते-मारते बे-सुध कर दिया । मुझे होश हुआ तो मैंने देखा कि मेरी माता और दादी मेरी सेवा-सुश्रुषा कर रही थीं और पिता जी तथा मुन्शी जी को बुरा-भला कह रही थीं ।

दूसरे ही दिन से हमें खूब घी-दूध मिलने लगा और मैं और भी बन गया । भूठ-भूठ दुर्बल बना रहा । गरज़ कई दिन घर

से बाहर न निकला, क्योंकि वह यम के दूत अर्थात् मुन्शी जी मौजूद थे ।

X

X

X

जब मैं ठाँक हो गया तो बाहर बुलाया गया और मुन्शी ने मुझसे कहा—“तूने जा चिल्ला गींचा था वह तो भूठा निकला, अब मेरा बताया हुआ चिल्ला गींच ।” मैं समझा कि सचमुच कोई चिल्ला होगा । राजा हो गया ।

मुन्शी जी ने कहा—“मेरा चिल्ला बड़ा कठिन है, अच्छा खाना, अच्छा पहनना और खेल-कूद आदि सब बन्द हो जायगा । पर तू पास अवश्य हो जायगा ।” मुन्शी जी ने मेरी पीठ ठोकी और कहा—“बस कल से चिल्ला शुरू है ।”

दूसरे दिन से मुन्शा जी ने अपना कठिन चिल्ला शुरू करा दिया । सुबह से शाम तक उन्होंने कूट-कूटकर मुझे पढ़ाया और खाने को केवल उबली हुई दाल और रांटी दिलवाई । यही उनका चिल्ला था । मालूम हुआ कि मुन्शा जी उस समय तक यहीं रहेंगे जब तक कि गर्मियों की छुट्टी समाप्त होने के बाद स्कूल न खुलेगा । क्या कहूँ कि मैं कैसे संकट में पड़ा था । दिन-रात मुन्शी जी मुझे बाहर रखते और मार-मारकर पढ़ाते और फिर यह जुल्म देखिए कि भोजन बहुत खराब दिलवाते । मैं छुट्टी को तरस गया । क्योंकि मुन्शी जी मुझे किसी भी समय नहीं छोड़ते थे । रात को चारपाई से चारपाई मिलाकर सोते और लेटे-लेटे ज़बानी प्रश्नों से तङ्ग करते और उत्तर न मिलने पर तुरन्त छड़ी रसीद करते । बारम्बार वे यही कहते कि मेरे चिल्ले की यही शर्त है ।

जब स्कूल खुला तब मुझे मालूम हुआ कि अब नई मुसीबत आने वाली है । यानी मैं बजाय घर पर पढ़ने के मुन्शी जी के घर

पर रक्खा जाऊँगा । मेरे प्राण सूख गये । सारांश यह कि मैं मुन्शी जी के घर पहुँचा, जहाँ मेरे ऊपर दिन-रात मार पड़ती थी और पड़ाया जाता था ।

बड़ी मुसीबत थी । सिवाय दाल के कुछ खाने का न मिलता था । क्योंकि चिल्ले के बीच इसका निषेध था । यदि मेरे घर से कोई बढ़िया चीज़ आती तो पिता जी उल्लू और गधे बनाये जाते और वह चीज़ कुत्ते को डाल दी जाती, पर मुझे न मिलती, क्योंकि मुन्शी जी कहते थे कि—“यदि कोई चीज़ भी तूने खा ली तो चिल्ला बिगड़ जायगा ।”

(७)

पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि इस चिल्लाकशी का क्या परिणाम हुआ होगा । मैं केवल अपने स्कूल या ज़िले ही में नहीं बल्कि पूरे प्रान्त में प्रथम रहा । मेरे पास होने की खुशी में मुन्शी जी आये और एक ज़ोर का चाँटा मारकर कहा कि यदि तू अबकी बार भी फेल हो जाता तो तुझे मार ही डालता और खुद भी मर जाता । गरज़ मेरे पास होने की खूब खुशी मनाई गई और ख़र्च मिटाई बटी और मुन्शी जी को कपड़े और रुपये भेंट किये गये ।

×

×

×

मेरी इस शानदार विजय का सारे गाँव में डझा बज गया और प्रत्येक आदमी मेरी प्रतिभा का कायल हो गया—विशेषकर मेरे श्वसुर जी । बड़ी जल्दी मेरा विवाह किया गया, जिसमें मुन्शी जी भी शरीक हुए । मैंने वास्तव में विवाह के दिन सन्तोष की साँस ली जब कि मुन्शी जी ने मुझे गले से लगाकर पक्का वादा किया कि अब तुझे कभी न मारूँगा ।

×

×

×

मैंने विवाह के बाद अपनी पत्नी से सख्त शिकायत की कि तूने और तेरे शाह साहब ने मुझे ऐसी सलाह दी कि पूरा वर्ष मुझे पिटते ही बीता ।

कुछ भी हो । मेरी सलाह है कि यदि कोई महाशय जलाली चिह्ना खींचे और यदि प्रेत आये तो कम से कम मन्त्र कढ़कर फूँकते समय अपना मुँह कुछ दूर ही पर रखें नहीं तो इस जोर का चाँटा पड़ने का खतरा होता है कि उसका असर आजीवन बाक़ी रहेगा ।

खामोशी का मतलब

मैं चार बजे की गाड़ी से घर लौट रहा था। दस बजे की गाड़ी से एक जगह गया था। चूँकि उसी दिन लौट आना था, इसलिये मेरे पास सामान इत्यादि कुछ भी न था। केवल एक स्टेशन रह गया था। गाड़ी रुकी तो मैंने देखा, कि एक साहब सेकन्ड क्लास के डिब्बे से उतरे। उनका क्रद बिना किसी अतिशयोक्ति छः फीट था। बड़ी-बड़ी मूँछें रोबदार चेहर पर हवा से हिल रही थीं। नेकर और कमीज़ पहने हुए पूरे पहलवान ज़ात हो रहे थे। ये किसी की प्रतीक्षा कर रहे थे। दूर से उन्होंने एक आदमी को... अपने नौकर को देखा। प्रत्यक्षतः उनका चेहरा भयानक हो गया। मैं बराबर वाले ज़्याड़े डिब्बे में बैठा था। एक साहब ने इन भयानक जवान को देखा, और आप ही आप उन्होंने कहा, “यह खूनी मालूम होता है।” मैंने उनकी आर देखा, और फिर इन भयानक साहब के डरावने चेहरे की ओर देखा। फिर मन ही मन मैंने उनकी राय का समर्थन किया। आप विश्वास करें, कि उनकी आँखें आग की चिंगारियों की तरह थीं। नौकर के आते ही एक कदम आगे बढ़ाकर उन्होंने उसे इतने ज़ोर से डाँटा, कि वह डरकर एकदम पीछे हटा, और गार्ड साहब से जो उसके बिलकुल ही पास थे, लड़ते-लड़ते बचा। गार्ड साहब सीटी बजाना बन्द करके एक ओर हो गये, उन्होंने एक दृष्टि इस मेहरबान नौकर पर डाली, और फिर उन साहब की ओर देखा। दोनों मुसकराये, गाड़ी चल पड़ी।

[१]

गाड़ी स्टेशन पर रुकी, और मैं उतरा। ये साहब भी उतरे।

आप विश्वास करें, मैंने समझा, कि मुझसे कोई आपदा लिपट गई, जब उन्होंने एकदम 'हाय' करके मुझे चिपटा लिया। वास्तव में उन्होंने कहा था, "तुम कहाँ ?" यदि उनकी तोंद कुछ नरम न होती तो कदाचित् मेरी एक आध पमली अवश्य टूट जाती। छूटते ही हाथ पकड़ लिया, और हँसकर कहा, "अब तुम्हें नहीं छोड़ेंगे।"

यहाँ निवेदन करना चाहता हूँ, कि मुझको व्यथ की बकवास से जितनी नफरत थी.....(अब नहीं है) उतनी किसी चीज़ से नहीं थी। मैं देखता था, कि लोग बातें कर रहे हैं। बिना किसी मतलब के एक दूसरे की बात काट रहा है। और हरएक यही चाहता है, कि सब लोग चुपचाप मेरी ही बात को सुनें। उस समय मेरी असाधारण खामोशी पर प्रायः आपत्ति की जाती। मुझसे शिकायत की जाती, कि मैं बातों में आनन्द नहीं ले रहा हूँ। मैं कोई जवाब न देता, और मन ही मन चचा शार्दी के शेर पढ़ने लगता—

‘चौकार बे फजूल, मन दर आमद—

मुराद रूये सखुन गुफ्तन न शायद ।

व गर बनीम, कि—ना बिना व चाह अस्त—

अगर खामोश न बशीनम गुनाह अस्त ।’

ऐसी दशा में कि मेरा शेर यह हो, जब उन्होंने मुझे पकड़ कर कहा, "अब तुम्हें नहीं छोड़ेंगे," सम्भव था कि मैं खामोशी से काम लेता। लेकिन यहाँ तो बिना बोले हुए काम नहीं चल सकता था। लेकिन पहले इसके कि मैं कहूँ, कि "साहब, आप कौन हैं, और मुझको क्यों पकड़ा है ? आखिर आप मुझे क्यों नहीं छोड़ेंगे, और कैसे न छोड़ेंगे ?" उन्होंने बिना मेरा जवाब या मेरी बात सुने हुए अपनी बातों का क्रम जारी रखवा है " ...और लोग कहाँ हैं ?" "अबे नालायक.....ओ बेवकूफ..... यह देख... यह देख।

आखिं खोल.....अरे आखिं खोलकर ।”

नौकर पर खड़े दाँत पीस रहे थे । मेरा यह सन्देश, कि मुझे तो नहीं कह रहे हैं, मिट चुका था । वास्तव में न मेरे जवाबों की आवश्यकता थी, और न मुझमें साहस था । कोई-कोई लांग सचमुच ‘हाजिर जवाब’ होते हैं । काश, मैं भी वैसा ही होता, तो कदाचित् उनके पहले प्रश्न के बाद दूसरे प्रश्न से कुछ पहले ताँगें में आनन्द से बैठा हुआ घर की ओर जाता होता । मैं अब कुछ अपने को सँभाल कर उनसे इस भ्रान्ति को दूर करने के लिए शब्द ढूँढ़ रहा था, और इसमें मुझे सफलता मिलती भी जान पड़ती थी, क्योंकि “क्षमा कीजियेगा मैंने पहचाना नहीं” बहुत ही उचित शब्द थे, जो मुझे मिल गये थे, और मैंने कहा, कि —

“क्षमा कीजियेगा”

लेकिन उन्होंने बात काटकर भट्ट कहा, “जी नहीं...यह असम्भव है ।” और फिर उसी क्रम में कहा, “सामान नहीं है ।” फिर बिना जवाब की प्रतीक्षा किये हुए स्वयं ही बोले, “कदाचित् दिन भर के लिए आये होंगे । खैर कोई चिन्ता नहीं । अब दो-तीन दिन तुम्हें न छोड़ूँगा ।” एक कहकहा लगाया, और बड़े जोर से कहा, “मैं नहीं छोड़ूँगा । नहीं छोड़ सकता ।”

मैंने मन में सोचा, कि भागूँ... हाथ छुड़ाकर, लेकिन पहले तो मेरी पतली कलाई मानो लोहे के पंजे में थी, और फिर स्टेशन की भीड़, भागने का विचार व्यर्थ था ।

[२]

मेरा हाथ पकड़े मुझको ले जाकर उन्होंने अपने साथ गाड़ी पर बिठाया । गाड़ी पर बैठते समय मैं कुछ रुका, कि कहूँ कि “जनाब, आप मुझे कहाँ और क्यों लिये जाते हैं ?” मैंने ज़रा गला साफ करके कहना चाहा, कि उन्होंने मानों ज़बर्दस्ती हाथ पकड़ कर

गाड़ी में बिठा दिया, और स्वयं भी बैठ गये, और बैठते-बैठते कहा—

“मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगा पिता जो तो कुशल से हैं ।”
मैंने कहा, “सकुशल हैं, और...”

वे बात काट कर बोल उठे, “और सब ?” और फिर कहा, “सब अच्छी तरह हैं... अरे मियाँ यह क्या बाहियात है, सुना है, कि तुम्हारे बाप ने एक और विवाह कर लिया । यह खबर कहाँ तक ठीक है । भगवान भला करे”—मैंने मन में कहा । क्योंकि मेरी माँ, बहुत दिन हुआ, कि मर चुकी थीं, लेकिन भगवान की दया से फिर भी दो-दो मातायें मौजूद थीं । क्या यह सम्भव है, कि पूज्य पिता जो के आवादी पसन्द करने वाले मन ने... या फिर मुझ अपने बालक के बुरे हाल पर तरस ग्वाते हुए दो मातायें मातृस्नेह के पड़ाव के लिये अर्थात् समझकर एक को ओर बढ़ा दिया हो । मैंने कुछ हफ्ताते हुए कहा, “हैं... मुझे नहीं मालूम ।” और साथ ही मैंने सोचा, कि इन साहब को कदाचित् मैंने पहचाना नहीं, और इनका सारा पड़ोसियाना परिचय-व्यवहार कहीं बिल्कुल ठीक तो नहीं ? आखिर क्यों न बहाने के साथ पूछ कर आगे के लिये परिचय प्राप्त कर लूँ । लेकिन मेरा कम बोलना... (अब तो बातूनी हूँ) और सवाल करने से बचने का स्वभाव... (अब तो भट सवाल करता हूँ) का भगवान भला करे । यह मुझमें कमजोरी थी । मैंने भट सोचा, कि यह तो विचित्र है, जिसे, कि मैंने अब तक गुण समझा था । लेकिन कहीं इन बातों के सम्बन्ध में विचार करने से बातचीत करने की शक्ति थोड़े ही आ जाती है । अफसोस हाथ मलता था, और कुछ कहना चाहता था, लेकिन या तो बोला ही न जाता और यदि साहस करके बोलने को होता तो भट वे ही सवाल कर देते ।

मैं यहाँ कहता रहा, कि अब उनसे मामिला साफ करूँ, और अब पूँछूँ, कि गाड़ी एक कोठी के फाटक के भीतर घुसी । मुझे

बढ़ाना मिला, और सोचा कि अब निश्चिन्तता से इनसे पूछूँगा, कि साहब मैंने आपको नहीं पहचाना । गाड़ी बाग में पहुँची, और ये साहब बोले, “पहली बार जब तुम आये थे, तो तुमने अंगूर की वह बेल न देखी हांगी... इसकी जड़ में तीन बन्दरों के सिर गड़वाये हैं ।”

मैं इसका क्या जवाब देता; क्योंकि जिन्दगी में मैं पहली बार यहाँ आया, और वह भी पकड़ा हुआ ! लेकिन मुँह में शब्द “बन्दर” निकल गया ।

उन्होंने कुछ गर्व के स्वर में कदाचित् इसी विचार से कहा, कि मैं उनसे आश्चर्य से पूछूँ, कि साहब बन्दरों ने कौन-सा अपराध किया था, जो उनके साथ यह अंग्रेजी व्यवहार किया गया, “और जब वे कुछ उचित कारण सामने रखें तो उनकी जानकारी पर आश्चर्य-चकित हो जाऊँ । कदाचित् उन्होंने इसी विचार से कहा—

“जी हाँ, बन्दर...बन्दरों के सिर ।” लेकिन मेरी खामोशी से उनकी जब आशा उखड़ गई तब वे स्वयं ही बोले, “आपको नहीं मालूम, वास्तव में मैं बागबानी की कला पर एक पुस्तक लिख रहा हूँ । बात है, कि बन्दर के सिर की खाद अंगूर के लिये बड़ी अनोखी है ।”

मैं भला क्या कहता ? मन में सोच रहा था, कि अब यदि अंगूर मिले तो खाऊँ या न खाऊँ ! बागबानी की चर्चा बन्द करके उन्होंने कहा,—

“वह देखो वह परसी की कब्र है ।” उझली उठाकर उन्होंने एक चौखंडे चबूतरे की ओर मुझे दिखाया ।

अंग्रेजों की कब्रें मैं पहले ही देख चुका था । कोई नई बात न थी । परसी ! हाँ इस नाम से भी परिचित था । जो भी अस्त्रबाज पढ़ते रहे हैं, वे ईराक के हाई कमिश्नर सर परसी काकिस के नाम,

उनके काम, और उनके प्रबन्ध तथा पालिसी से परिचित ही हैं। लेकिन यहाँ इनकी कब्र कैसे ? इनके कोई सम्बन्धी होंगे ? मैंने कोई सवाल न करके अपनी आदत के अनुसार मन में यह कह कर विश्वास कर लिया। हम बरामदे के पास पहुँच रहे थे। 'गाड़ी बिलकुल धीरे-धीरे चल रही थी और इसी तरह बोले—

“मुझे परसी के मरने का बहुत शोक हुआ और एक दिन मैंने खाना नहीं खाया।”

मुझे बिलकुल विश्वास हो गया कि इनकी मिस्टर परसी से दोस्ती होगी। इतने में मैंने देखा कि एक छोटा-सा कुत्ता दौड़ता हुआ गाड़ी के पास पहुँचा। बँगला अभी बहुत दूर था और यह अपने स्वामी के स्वागत के लिए आया था। मैं ध्यानपूर्वक देख रहा था कि यह कटखना कहाँ तक हाँ सकता है कि वह बाले। “यह देखिये, यह गरीब रह गया और परसी मर गई। बड़ी अद्वितीय कुतिया थी।” इधर मैं अचम्भे में था और उधर वह प्रशंसात्मक शब्दों में कहने लगे। “आप यह खयाल कीजिये कि इतनी-सी कुतिया थी मगर अकेली बिल्ली को मार डालती थी और फिर एक गुण और भी था, वह यह कि कोई अनजान बँगले के अहाते में नज़र पड़ जाय तो बस उसकी खबर ही तो ले डालती थी।”

मैं चौकन्ना हुआ। दिल में मैंने कहा कि अच्छा हुआ कि परसी मर गई और आज को न हुई। फिर विचार किया कि यह कुत्ता भी तो उसी के साथ का है ! मैं जनाव कुत्तों से बहुत डरता हूँ और विशेषकर उन नालायक कुत्तों से जो यद्यपि कटखने न हों मगर दौड़ पड़ते हैं और तमाम होश-हवाश उड़ाकर प्रायः गिरा देते हैं। मैंने परसी की कब्र की ओर सावधानी से निगाह डाली और फिर उस कुत्ते को यानी स्वर्गीय परसी के पति को देखा। इतने में गाड़ी बरामदे से आकर लगी और मैंने देखा कि एक भयानक बुलडाग आँग-

झाई लेकर उठा। इतने में हम दोनों उतर पड़े। छोटा कुत्ता तो दुम हिला-हिलाकर अपने स्वामी के पैरों पर लोट रहा था, पर यह गम्भीर वृद्ध यानी बुलडाग साहब मेरी जान लेने में व्यस्त हो गये यानी बरामदे से उतर कर उन्होंने मुझे सूँघा। मेरी साँस रुक गई और चेहरे पर ऐसी हवाइयाँ उड़ने लगीं कि उन्होंने अनुभव किया और मुसकराकर कहा। “अजी यह तो वही पुराना टामी है। बस सूरत ही डरावनी है। काटना तो कमबख्त जानता ही नहीं। बहुत किया इसने और बड़ी वीरता दिखाई तो बस लिपट जाता है……।” वह मेरे डरपोकपने पर जोर से हँसे, क्योंकि मैं फाँदकर गाड़ी में पहुँच चुका था। “लाहौल बला कुवत ! तुम्हारा कुत्ता मे डरना न गया। यह तो वही पुराना टामी है।” यह कहते हुए उन्होंने हाथ पकड़ कर गाड़ी से उतारा और मुझे तेज़ी से बिना संकोच कमरे में जाना पड़ा। सौभाग्य से कुत्तों ने एक गिलहरी को देख पाया जिसके पीछे वह ऐसा दौड़े कि आँखों से ओझल हो गये। मुझको संताप हुआ।

[३]

पहुँचते ही उन्होंने आवाज़ दी “खाना लाओ।” ईश्वर बचाये। मैंने दिल में कहा, यह खाने का कौन समय है ? बहुत जल्दी हाथ धोये गये। इनकार से वह क्यों मानते। मैंने भी कहा।

‘ई’ हम अन्दर आशिकी बालाय गुमहाय दिवार’

[इश्क यानी प्रेम में सैकड़ों मुसीबतें हैं। एक यह भी सही]

खाने की मेज़ पर गरम किया हुआ पुलाव, शामी कबाब, अंडों का क्रोरमा और दूसरे खाने थे। मैं रक्षाबी के एक ओर के चावल उठा कर दूसरी ओर रखकर टीला-सा बनाने में व्यस्त हुआ और उन्होंने तेज़ी से चावल खाना……नहीं मैंने ग़लत कहा, बल्कि पीना आरम्भ किया। कदाचित् वह चबाना न जानते थे या चावलों को चबाने की वस्तु न समझते थे। “आरिफ़ मियाँ कहाँ हैं !”

चिन्ताकर उन्होंने नौकर से कहा कि “उन्को जल्दी बुलाओ।” और मेरी ओर मुसकुराकर कहा, “तुम्हारा भतीजा तो आया ही नहीं। न रहा होगा, नहीं तो वह अवश्य मेरे साथ भोजन करता है।”

आप विश्वास करें कि मैंने इधर-उधर भागने की नियत से देखा। भतीजा ! यह शब्द भतीजा मेरे लिए शेर से कम न था और फिर “भोजन करते हैं।” जिसके एक न दो बल्कि सगे-सौतेले मिलाकर साढ़े चौदह भतीजे हों, उससे पूछिये कि ऐसी दुनिया अच्छी या नर्क ? ईश्वर ही जानता है कि दुख देने के लिए वहाँ नर्क में भतीजे भी होंगे या नहीं ? अगर मेरे भतीजे स्वर्ग में गये तो मैं नर्क का जीवन ही कहीं अच्छा समझूँगा। मैं यह कहने में अत्युक्ति से काम नहीं लेता, क्योंकि चौदह-पन्द्रह भतीजे और सब एक जगह रहते हों तो बेचारे गरीब चचा की जो दशा होगी उसको आप ही सोच लीजिए। वैसे ही क्या कम। मेरी जान घर के पन्द्रह भतीजों ने संकट में डाल रखी थी जो यह एक और निकला !!! कोई आत्म-हत्या करता तो मैं यह जानने का प्रयत्न करता कि उसके कितने भतीजे हैं। एक हो तो ठीक नहीं तो दा होने की सूरत में मुझको आत्म-हत्या करने का कारण मालूम करने में देर नहीं लगती थी। शब्द भतीजा के मानी कुछ भी हों मगर मेरी समझ में यमदूत या जहन्नुम के सेक्रेटरी का नाम भी भतीजा होना चाहिए। मैं इस फिलासफी पर विचार कर रहा था कि वह बोले, “तुम्हारे अब कितने बच्चे हैं ?”

मैं इसका क्या उत्तर देता क्योंकि मेरा विवाह ही नहीं हुआ है लेकिन कदाचित् उनको उत्तर की आवश्यकता ही न थी, क्योंकि तुरन्त ही उन्होंने मेरे उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही कहा, “तुम्हारी बीबी कहाँ है ? तुम्हारे कितने बच्चे हैं ?” उन्होंने बहुत जोर देकर पूछा, “तुम्हारे कितने बच्चे हैं ?” बिबब होकर मुझको कहना पड़ा

कि “एक भी नहीं।” चावल का बड़ा-सा कौर जो उन्होंने मुँह में रखा ही था, “अरे” के साथ निगल कर बोले, “अरे.....दोनों ... दोनों बिचारे.....यह आखिर कब ?.....भाई बात तो यह है कि ईश्वर अगर बच्चे दे तो जीवित रहें और नहीं तो उनका होना और मर जाना तो बस.....ईश्वर ही रक्षा करे...?”

वह कदाचित् मुझसे सहानुभूति कर रहे थे और उन्होंने कहा, “तुम्हारी बीबी की न मालूम क्या दशा होगी ?” आप स्वयं सोच लीजिए कि मुझे भला क्या मालूम कि वह लड़की किस दशा में होगी जो भविष्य में चलकर मेरी बीबी होगी और मैं स्वयं बेबस था तो भला इनको कि उसकी क्या दशा होगी, कि इसी बीच में जनाब वह आ गया ! कौन ? अजी वही यमदूत या जहन्नुम का सेक्रेटरी यानी मेरा मुँह बोसा भतीजा आरिफ़, मैं घबराया, क्योंकि वह तीर की तरह ‘पापा !’ ‘पापा !’ चिल्लाता चला आ रहा था । मैं सँभलकर बैठा और भगड़े की सूतों और सम्भावनाओं पर विचार करने लगा कि उसकी दृष्टि दूसरी ओर गई । वह अपने पापा पर गिरा और तेज़ी से वह भी पुलाव पीने में तन्मय हो गया ।

पिता ने अपने सुपुत्र से कहा, “तुमने चचा को न तो सलाम किया और न टाटा किया टाटा...टाटा” कई बार फिर तकाज़ा किया “सलाम करो टाटा करो.....सलाम करो ।” दूसरे शब्दों में मुझसे तकाज़ा हो रहा था कि कहूँ कि “जीते रहो ।” मगर हज़रत मुझसे यह धोखेबाज़ी होना असम्भव था । एक तो वैसे ही बहुत न बोलता था (अब नहीं).....और भरसक बिना बातचीत किये काम निका-लना चाहता था और वैसे भी भतीजों को आशीर्वाद देने के विरुद्ध । यह न समझियेगा कि मैं, ईश्वर न करे, चाहता था कि वह मर जाय । अजी हजार वर्ष जीवित रहें मगर मेरे आशीर्वाद की आव-श्यकता न हो तो अच्छा । कई बार के तकाज़े से तज़ आकर आखिर

भतीजे साहब ने मेरी छाती पर कीदी दल ही डाली, याद्वी अपना सीधा हाथ जो पुलाव के घी में खूब तर था, मेरे घुटने पर रखकर अपना बायाँ हाथ टाटा के लिए बढ़ा दिया। मैं सन्नाटे में आ गया। अपने साफ़ पतलून पर चिकनाई का धब्बा देखकर मेरी आँखों में खून उतर आया, क्योंकि मेरे पास यही एक अच्छा पतलून था जो भतीजों की पहुँच से अब तक न मालूम कैसे बचा रहा था। इधर तो मैंने चावल घुटने पर से साफ़ किये और उधर उन्होंने कहा; “हाथ उलटे हाथ से।” क्या ही अच्छा होता कि वह हज़रत भतीजे साहब पहले ही टाटा के लिए दाहना हाथ बढ़ाते और बायाँ हाथ खुशी से मेरे घुटने क्या गले पर रख लेते। मैंने जबरदस्ती विवश होकर मिलाया और दिल में कहा, “जालिम ! तूने मुझे बेमौत मारा। मेरे पास एक ही पतलून था, जिसे तूने यों खराब किया।”

[४]

मैंने चैन की साँस ली, जब यह जान से प्यारा भतीजा यह कह कर भोजन छोड़कर एकदम से भागा “बल्ला बल्ला।” या तो वह तेज़ दौड़ता ही होगा या फिर यह मसल बिलकुल ठीक है कि लाहौल पढ़ने से शैतान बुरी तरह से भागता है। मैं लाहौल पढ़ रहा था और उसके फल को मन ही मन में मान रहा था। “आपने हड्डी का व्यापार आखिर क्यों छोड़ दिया ?” उन्होंने एक हड्डी का गूदा निकालने का प्रयत्न करते हुए कहा। पाठक ज़रा विचार करें कि हड्डी के व्यापार को मैं छोड़ता तब जब कि मैंने कभी यह व्यापार आरम्भ किया होता। कहने को हुआ कि कहूँ कि “हज़रत, मुझको भला हड्डी के व्यापार से क्या मतलब ?” मगर तोबा कीजिये, वह तमाम अपने प्रश्नों का उत्तर पहले ही से आप ही दे रहे थे या फिर उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही दूसरा प्रश्न कर देते थे। मुझे भला कोई ज़रा-

सा भी मौका क्यों देते जो मैं छुट्टी पाता । इसके पहले कि मैं कौर खतम करके कहूँ उन्होंने कहा—

“ब्यापार करनेवाला तो ब्यापार ही करता है, हड्डी की न सही पसली की सही ।”

यह कहकर वह बड़े ज़ोर से हँसे । मैं उनके हलक की गहराई पर विचार कर रहा था कि वह आ पहुँचा । यमदूत... वह दुखदार्द । बल्ला हाथ में लिये हुए चिंघाड़ता हुआ आया और भोजन करने की जगह बल्ले की तलवार बनाकर पैतड़े बदल-बदलकर नृत्य करने लगा, मानो वह पटे के हाथ निकाल रहा था ! मेरे मेज़वान या यों कहिये कि बहेलिये की क्या दशा हुई । अभाग्य से उनको चवाल पीने की जगह अगर कहीं खाने की आदत होती तो हँसी के कारण अवश्य उनके गले में फन्दा पड़ जाता, क्योंकि उनकी जान में भोजन करने में हँसी बाधक नहीं हो सकती थी । वह खूब हँस रहे थे । कहने लगे—“ब. खुदा ! इस पाजी को तो देखिये ।” मैं इसका क्या उत्तर देता, क्योंकि देख ही रहा था और जानता था कि जो समय बीत रहा है, वही बहुत है । विनोट का नियम है कि सारा खेल बस निगाह का होता है । शत्रु से जब तक आँख मिली रहे या शत्रु के चालों पर जब तक निगाह जमी रहे, तभी तक बचत है नहीं तो इधर आँख झपकी और दो बार उसका बल्ला मेरे सर पर से होकर निकल गया और अगर मैं सर न बचा जाऊँ तो सर उड़ गया था । उन्होंने केवल “हाँय” कहा । मैं टकटकी बाँधे उस गर्दन मारने योग्य भतीजे की ओर देख रहा था कि मेरे प्रेमी मेज़वान ने मेरे कम भोजन करने की शिकायत करके कहा; “यह लीजिये, कबाब नहीं खाया ।” इधर मेरी निगाह चूकी और उधर इस ज़ोर से मुँह पर बल्ला पड़ा कि मेरी नाक पिच्छी हो गई । नहीं बल्कि मुझको ऐसा मालूम हुआ कि शायद मेरी नाक ऐनक के साथ उड़ी चली गई । तुरन्त पहले तो

मैंने अपनी नाक को देखा और उसको मौजूद पाकर लपककर मैंने ऐनक उठाई। भतीजे साहब भी गिर पड़े थे। ऐनक का एक ताल टूट गया था। 'वा अली' कह कर उन्होंने पटेवाज़ को सम्भाला और मैंने अपनी ऐनक को। "तुम बड़े नालायक हो" डाँटकर उन्होंने लड़के से कहा। मुझसे ज़मा माँगी और फिर उससे कहा कि ज़मा माँगो, यद्यपि मैं स्वयं उनसे ज़मा माँग रहा था। वह चुप हुआ तो कहा "अच्छा, अब जाओ और अपनी अम्मी जान से कहना कि चचा हामिद आते हैं।"

इधर उन्होंने यह कहा और उधर मैं बेचैन हुआ, क्योंकि मैं बिलकुल हामिद न था। इधर मुझे अपना नाम मालूम हुआ और उधर मेरे ऊपर भूत सवार हुआ। भोजन से मैंने हाथ खींचा और पुराने स्वभाव के अनुसार घुटकर रह गया, मगर मैं कुछ कहने ही वाला था कि वह बोल उठे, "देखिये, कितनी जल्दी जाता है।" मैंने दिल में कहा, मैं लाहौल से और भी जल्दी भगा दूँगा। किसी तरह यह पीछा तो छोड़े।

[५]

खाना खतम करके हम बरामदे में आये और मैं कुछ कहने ही को था कि उन्होंने एक बड़ा सिगार सुलगाया और दूसरा मुझे दिया और मैंने मना किया तो अचम्भे से बोले—

"अरे ! तुमने छोड़ दिया ? यह कैसे ? पहले जब आये थे तो खूब पीते थे ! सचमुच कमाल कर दिया । बहुत अच्छा किया । बहुत अच्छा किया । सचमुच खराब चीज़ है ।" फिर एक छोटा-सा लेकचर तम्बाकू के दुर्गुणों पर देते हुए कहा—"अब तुम भी अचकन उतार कर ज़रा हाथ मुँह धो डालो ।"

असल में हम दोनों सकुशल यात्रा के बाद आते ही खाने पर तुल गये थे। इतने में उन्होंने चिल्लाकर कहा, "अरे भाई, टामी को

क्यों बाँध दिया ? कोई है ?” एक आदमी आ खड़ा हुआ । उससे उन्होंने पूछा कि टामी को क्यों बाँध दिया ? उसने मेरी ओर संकेत करके कहा, “आप के कारण ।” उन्होंने कहा, ‘बकते हो । उसको तुरन्त खोलो । यह समय कुत्तों के बाँधने का नहीं है ।’ मेरी ओर देखकर कहा “असल में यह समय तो कुत्तों के लिए नियत है..... “देख छोटे कुत्ते को भी” यह नौकर से कहा ।

मैंने दिल में कहा कि यह और भी आफ़त हुई । ईश्वर रक्षा करे । ईश्वर जाने, कुत्तों के मालिकों को कुत्ते छोड़ने में क्या आनन्द मिलता है । यह नहीं देखते कि वे आने-जानेवाले पर दौड़ते हैं । हाँ, कुत्तों की चर्चा पर मुझे याद आया कि एक कुत्ता हमारे यहाँ भी पाला गया था । भतीजों ने अगर मुझ गरीब चचा के ऊपर कोई उपकार किया तो यह कि उसको एक हौज़ में नहलाते-नहलाते डुबो दिया, क्योंकि उसको दिन भर नहलाते थे ।

“आइये, बाग में चलें ।” उन्होंने मुझसे कहा । झुटपुटा समय था और हम उठने ही को थे कि एक युवा महिला बहुत अच्छी सूरत-शकल की गुलाबी कपड़े पहने निकलीं । मैंने देखा ही था कि “अरे” कहकर वह एक दम से लौट गईं । मेरे मेज़वान घबराये इधर मुड़कर देखा और हँसकर बोले “आओ भई, आती क्यों नहीं हो ?” दूसरी ओर करवट बदलकर मुझसे बोले, “बहुत दिन हो गये । शायद तुमको पहिचाना नहीं । तुममें परिवर्तन तो बहुत हो गया है ।” मेरी ओर ध्यानपूर्वक देखकर बोले और फिर कहा... “अरे आती क्यों नहीं हो... बड़ी पागल हो ।” यह कहते हुए उठे ।

अब मेरे लिए भागने का बहुत अच्छा मौका था, क्योंकि वे कमरे में गये । मैं चाहता ही था कि इस सुवर्ण अवसर से लाभ उठाऊँ कि क्या देखता हूँ कि वही भयानक कुत्ता टामी छोटे कुत्ते

के साथ डाक गाड़ी की तरह इसी ओर चला आ रहा है। हे ईश्वर ! अब मैं क्या करूँ ! एक ओर से कुत्ते आ गये थे और दूसरी ओर से बेगम साहबा से मिलकर भेद खुल जाने वाला था। अगर कुत्तों ने मुझको घेर न लिया होता तो मैं भाग गया होता ! मेरा हृदय धड़क रहा था और अब मैं एक अजीब ही मुसीबत में था। बेगम साहबा ने उन्होंने कुछ बातें कीं और उन्होंने आधी आँख से मुझे भाँककर देखा। मैं सन्न सा रह गया जैसे मेरी जान निकल गई हो, क्योंकि मैं भागने का विचार कर रहा था और उनके आक्रमण से बचना ऐसे कि कुत्तों से भी बचत हो केवल एक बड़ा गमला फाँदकर सम्भव था। मैंने गमले की उँचाई पर निगाह डाली। मियाँ-बीबी में जल्दी-जल्दी कुछ बातें हुईं और वह कुछ गम्भीर चेहरा बनाये हुए निकले। मैं भागने के लिए तैयार होकर खड़ा था मगर पैर मानों ज़मीन ने पकड़ लिये। वह मेरे पास पहुँचे.....मैंने कुत्तों की ओर देखा और फिर गमले की ओर.....मन में सोचा कि फाँद जाऊँगा और बाईं ओर से घूमकर अहाता की दीवार पर से निकल जाना सम्भव है.....वह आ गये.....मैं जानता था कि अगर उन्होंने घूँसा मारा तो मैं कलाई से रोक लूँगा। कलाई तो टूट ही जायगी लेकिन मुँह बच जायगा। उन्होंने अपने जूते की चमक को देखा। मैंने कमरे की ओर देखा कि बेगम साहबा भाँक रही हैं। “क्षमा कीजियेगा” मेरे मेज़वान ने बहुत ही नम्रता-पूर्वक कहा। शायद धोखा.....मुझको धोखा हुआ।” मैंने सर झुकाकर कहा “मुझको स्वयं रज्ज है।” वे बोले “आपका शुभ नाम ?” मैंने अपना नाम और पता इत्यादि बताया। वह एक दम से बोले, आपके पिता जी...! ओफ़ाँह !...आप..... आपके पिता जी से तो पुराने सम्बन्ध हैं। आपसे मिलकर बड़ी प्रसन्नता हुई।” उन्होंने हाथ मिलाकर कहा “आप मेरे मित्र हामिद से मिलते-जुलते हैं। बिलकुल वही।.....हूँ बहू वही ! केवल आपकी

आँखें थोड़ी छोटी हैं और माथा थोड़ा कम चौड़ा है, नहीं तो आप बिलकुल ठू बहू वही हैं। हाँ, और वह ऐनक नहीं लगाते और उनके होंठ थोड़ा पतले हैं, नहीं तो बिलकुल आपकी सूरत-शकल के हैं। बस केवल आपकी नाक कुछ उनसे विशेष चौड़ी-चकली है और.....तो वह ऐनक के कारण से.....आपकी ऐनक क्या हुई ?” मैंने बताया कि उसका एक ताल टूट गया है, इस कारण मैंने जेब में रख ली। उन्होंने ऐनक के टूटने पर शोक प्रगट किया। फिर उन्होंने बड़ी नम्रता-पूर्वक कहा, “कोई हर्ज नहीं। पहले न सही। अब तो हम आप घनिष्ट मित्र हैं।” यह कहकर उन्होंने फिर बड़े उत्साह-पूर्वक हाथ मिलाया।

मैंने आज्ञा चाही तो उन्होंने हठ किया। लेकिन मेरे न मानने पर कहने लगे कि गाड़ी तैयार कराये देता हूँ। लेकिन मेरा दुर्भाग्य, मैं न माना। उन्होंने बहुत कुछ कहा लेकिन मैं न माना। थोड़ी दूर तक बाग के पहले मोड़ तक वे मुझको बिदा करने आये और फिर आने का पक्का वचन ले लिया। वे तो लौटे और मैं तेज़ी से फाटक की ओर चला मगर नज़रत ! वह कुत्ते अपने साथ न ले गये और वे दुम हिलाते और कान फड़फड़ाते मेरे पीछे-पीछे चले आ रहे थे। मेरा हृदय उलटने लगा, और मैंने अपनी चाल कुछ बढ़ाई। कम-बख्त कुत्ते भी बढ़े। मैं और तेज़ हुआ और वे भी और तेज़ हुए। विवश होकर मैं भागा तो वे भी भागे, अब मैं ऐसा जी छोड़कर भाग रहा था कि मुझको सर-पैर की भी खबर न थी। दृष्टि कमज़ोर होने के कारण ऐनक लगाता था। बिना ऐनक के राह धुँधली दिखाई दे रही थी और फिर अँधेरा हो रहा था। मगर जनाब, जिसके पीछे कुत्ते लगे हों वह खाईं गड़हा कुछ नहीं देखता। कुत्तों से बचने के लिए मैंने जी तोड़कर प्रयत्न किया और फाटक छोड़कर एक ओर अहाते की दीवार नीची देखकर उस ओर भागा। कुत्ते कमबख्त

अब भाग ही नहीं रहे थे, बल्कि भूँक भी रहे थे। नरम-नरम कूड़े के ढेर पर मैं फुरती से चढ़ा और अपनी जान से हाथ धोकर ऐसा जी छोड़कर भागा कि बिना दीवार को देखे फाँद गया। धूरे और कूड़े पर से लुढ़कता हुआ कोई पन्द्रह फुट की गहराई में गिरा। बौखला कर उठा और गिरा। एक निगाह तो देखा कि कुत्ते ऊपर ही रुक गये हैं और फिर वहाँ से जैसे बन पड़ा वैसे जान बचाकर ऐसा भागा कि सड़क पर आकर दम लिया। सारा शरीर और कपड़े कूड़े में लथपथ हो गये थे। पतलून का सत्यानाश हो चुका था। भाड़ता-पोंछता घर पहुँचा।

वह दिन और आज का दिन। मैंने शपथ कर ली है कि चाहे कोई कुछ भी कहे, मैं बात और वह भी बे मतलब की बात करने में संकोच न करूँगा और अगर तनिक भी किसी को मैं चुप पाता हूँ तो उसको बोलने पर विवश करता हूँ और अपने प्रश्नों का उत्तर तो अवश्य ही ले लेता हूँ।



परिचितक का पान

(१)

रेल की यात्रा में यदि कोई मौजी यात्री मिल जाय तो सारा रास्ता बड़े मज़े से कट जाता है। हालांकि बहुत से लोग ऐसे भी होते हैं कि यदि उन्हें कोई भी मिल जाय तो वे उसी के साथ समय काट लेते हैं। मगर जनाव मैं अपरिचित मनुष्य से बहुत घबड़ाता हूँ और विशेषतः जब वह पान खाता हो। अब तो नहीं, पर पहले मेरा यह हाल था कि पान खानेवाले यात्री से लड़ाई करने को भी तैयार हो जाता था। अगर जीत गया तो खैर, नहीं तो हारने की अवस्था में मैं स्वयं वहाँ से हट जाता था। मैं एक बड़े ज़रूरी काम से देहली से आगरा जा रहा था, सौभाग्यवश एक बड़े मौजी साथी गाज़ियाबाद से मिल गये। ये एक हिन्दू बैरिस्टर के लड़के थे और एम० एस-सी० में पढ़ते थे। खुर्जा के स्टेशन पर एक और साहब पधारे - यह भी समवयस्क होने के कारण हमारी ही बेंच में आये और बहुत से लोग आ गये, और मैंने बड़ी बेचैनी से देखा कि इनमें एक महाशय पान खानेवाले हैं। इन महाशय ने हमारी ओर मुख किया और इधर मैं घबड़ाया। उन्होंने मेरी बेंच पर बैठने की नियत से कुली से असबाब मेरी ओर रखवाना चाहा। मैंने एक खचाखच असबाब और यात्रियों से भरी हुई बेंच की ओर संकेत करके कहा—“आप उस ओर बहुत आराम से बैठ सकते हैं।”

उन्होंने इसको शायद बहुत असभ्य व्यवहार ख्याल किया और बुरा मानते हुए कहा—“श्रीमान्, जरा स्वयं कष्ट करें।”

“यह जगह घेरी हुई है।” मैंने झूठ से काम लेते हुए बड़ी बेमुरब्बती से कहा।

मगर वह इतने में असवाब रखवाकर बैठ भी चुके थे ... मेरी ओर उन्होंने ध्यान से देखा ... मैं उनकी ओर धृणा नहीं बल्कि कुछ क्रोध से देख रहा था; क्योंकि मुझे पाने खानेवाले से इतनी धृणा नहीं होती थी जितना कि उस पर क्रोध आता था। (अब बिलकुल नहीं आता)

यह महाशय फ्रांस्टर रङ्ग की शेरवानी पहने हुए थे। तुर्की टोपी लगाये थे। अवस्था शायद चालीस या पैंतालीस साल के बीच थी, कपड़े बहुत साफ़ और सफेद थे।

रेल चली तो मैं इस चिन्ता में था कि अब ये अवश्य अपनी डिबिया से पान निकालकर खायेंगे, क्योंकि उनके मुख-चालन से ऐसा मालूम हो रहा था कि अब मुँह का पान समाप्त होने वाला है। इतने में मेरी नज़र उनके हैंडबैग पर पड़ी, जिससे मुझे यह तुरन्त मालूम हो गया कि ये महाशय किसी बैरिस्टर साहब के मुन्शी के लड़के हैं, क्योंकि उस पर लिखा था, टी० एच० बार ऐट ला।

मैं न अब असभ्य या कटुभाषी हूँ और न पहले कभी था, मगर पान खानेवाले यात्रियों से चूँकि मुझे बड़ी चिढ़ थी, अतः अब मैं यह सोच रहा था कि इनको यहाँ से किस तरह हटाऊँ, परन्तु थोड़ी ही देर में मैं अपने दोनों साथियों से बातों में तन्मय हो गया। ज्यादा देर बातें करते न गुज़री थी कि एक खटका हुआ। सिगरेट केस के खटके और पान की डिबिया के खटके में आकाश-पाताल का अन्तर है। हालांकि इनकी ओर मेरी पीठ थी, मगर मैं जान गया और पान की डिबिया का गीला-गीला लाल कपड़ा मेरे नज़र के सामने बिना देखे ही आ गया। मुड़कर देखा तो उनके हाथ में एक पान का

डुकड़ा है। शिष्टाचार वश उन्होंने मेरे सामने पेश किया। मेरे लिए इसने एक कोड़े का काम किया; मैंने जलकर कहा—“मैं ऐसी मूर्खता के लिए क्षमा चाहता हूँ।”

मैंने देखा कि मेरे इस वाक्य ने क्या काम किया, परन्तु उन्होंने जरा अपना सिर हिला देने के अतिरिक्त मुँह से कुछ न कहा।

न तो मैं लज्जित था और न मुझको पश्चात्ताप था। थोड़ी देर भी न गुज़री थी कि उन्होंने झिड़की के बाहर सिर डालकर थूका। मैंने मुड़कर तेज़ी से कहा, “श्रीमान अगर आपको यही धन्धा करना है तो कृपा करके दूसरी जगह ढूँढ़ लीजिए।”

“क्या फ़रमाया जनाब ने?”

“मैंने यह फ़रमाया कि श्रीमान, यह लाल पिचकारियाँ किसी दूसरी जगह छोड़ें।”

उन्होंने बड़े धैर्य से काम लेते हुए कहा, “क्षमा कीजिएगा, मैं इस प्रकार की बातचीत का आदी नहीं हूँ।”

“अगर श्रीमान इस प्रकार की बातचीत के आदी नहीं हैं, तो मैं भी इसका आदी नहीं कि आप मेरे पास बैठकर गन्दगी फैलाएँ”

“श्रीमान आप ज़रा”

“लाहौल बिला कूवत” मैंने भी बात काटते हुए कहा, “ज़रा ख्याल तो कीजिए कि बकरी की तरह पत्ते चबाना कसम खुदा की।” मैंने अपने साथी से कहा, “यह छालिया भी खूब है !! मानो लकड़ी या इंधन चबा रहे हैं।”

मारे क्रोध के उन महाशय का मुँह लाल हो गया, परन्तु बड़े ही धैर्य से उन्होंने बिलकुल चुप होकर मेरी ओर से मुँह फेर लिया और सुनी-अनसुनी एक कर दी। “आपको यह नहीं चाहिए था” मेरे साथी ने मेरे असभ्य व्यवहार को देखते हुए कहा।

“मैं नहीं कह सकता कि मुझे पान से कितनी घृणा है।”

(२)

हमारे नए साथी जो गाज़ियाबाद से बैठे थे हमारे क्लासफेलो निकले। उन्होंने भी एल०-एल० बी० फ़ाइनल का इस्तहान अलीगढ़ से दिया था। एक दूसरे से विलकुल अग्ररिचित थे, क्योंकि दर्जे में पौने दो सौ लड़के थे और रात को लेक्चर होते थे। संयोगवश एक दूसरे पर दृष्टि न पड़ी थी या अगर कभी पड़ी भी होगी तो खयाल न रहा होगा। दूसरे साथी को इस पर बड़ा आश्चर्य हुआ। परीक्षा फल अभी निकला न था, केवल पचीस दिन परीक्षा के गुज़रे थे, इसलिए परीक्षा के बारे में बातचीत होने लगी। उनके सब पच्चे अच्छे हुए थे और मेरे भी सब पच्चे अच्छे हुए थे। पिछले वर्ष वे सेकेन्ड डिवीज़न में पास हुआ था। इस वर्ष अपने पास होने का मुझको पूरा भरोसा था और वह महाशय कहने लगे कि “जनाव, सेकेन्ड डिवीज़न तो आपकी कहीं गई ही नहीं.....।” इस वाक्य से मुझको बहुत आनन्द मिला। हृदय से परमात्मा को धन्यवाद दे रहा था कि विद्योपार्जन की अन्तिम श्रेणी भी समाप्त हुई क्योंकि मुझको अपने पास होने का पूर्ण विश्वास था, जिसमें सन्देह की गुञ्जायश तक न थी, यदि कोई असाधारण घटना यूनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार के दफ़्तर में न हो जाय। हर एक पच्चे का ज़िक्र किया गया और उसमें कितने नम्बर मिलने की आशा थी इसका अनुमान लगाया गया और कम से कम जो अनुमान लगाया वह यह था कि सेकेन्ड डिवीज़न तो कहीं गई नहीं। किस जगह वकालत शुरू की जाय, कुछ इस पर बहस होती रही। फिर वकालत न चलने की सम्भावनाओं पर इस प्रकार से बातचीत शुरू की गई कि दोनों ओर से इसका खूब विरोध हुआ।

अलीगढ़ का स्टेशन आया और वे महाशय जो खुर्जा से बैठे थे, उतर गए। उतरते समय हमने एक दूसरे का रोल नम्बर नाम और

पता सहित लिख लिया और पत्र व्यवहार का बादा भी किया.....
(अभी तक न उन्होंने मुझे पत्र लिखा और न मैंने उन्हें ।)

अलीगढ़ से गाड़ी चली । एक बात मैंने विचित्र नोट की । अब तक तो वे पान खानेवाले महाशय कुछ-कुछ उदास और खिन्न थे परन्तु अब वे मेरी ओर बड़े ध्यान से देख रहे थे । उनके चेहरे से तमाम क्रोध दूर हो चुका था । शायद वह साफ दिल थे और मेरी असभ्यता को भूल गए थे । उन्होंने मुझसे पूछा, “आपने इस वर्ष एन-एल० बी० फ़ाइनल की परीक्षा दी है ?” यह कहते हुए डिविया खोली और मैंने “जी हाँ” ही कहा था कि उन्होंने एक पान मुझे फिर पेश किया । मुस्कराते हुए उन्होंने कहा, “आपको पान से घृणा है, पर आप इसको तो खाकर देखे ।”

मैंने उनकी ओर देखा.....क्या यह सम्भव था कि वह सम्पूर्ण गम्भीरता को बिदा करके मुझको चिढ़ा रहे थे ताकि बदला लें.....
अवश्य यही बात है.....यह ख्याल करते ही मुझको बड़ा क्रोध आया.....वास्तव में उनके मुख से यही मालूम होता था क्योंकि उनके चेहरे पर एक शरारत भरी मुस्कराहट थी । उन्होंने पान ओर आगे बढ़ाया और मैंने यही उचित समझा कि उनके हाथ से पान लेकर खिड़की के बाहर फेंक दिया । मैं समझा कि मेरी जीत रही पर वह महाशय बजाय गुस्सा होने के अब शायद मुझे बेवकूफ बनाने पर तुले हुए थे । दूसरा पान पेश करके बोले, “अगर अब इसको भी आपने फेंक दिया तो उम्र भर पछुताना पड़ेगा ।”

मैं असभ्य, अशिष्ट या कटुभाषी नहीं हूँ परन्तु मुख से कुछ कटु-वचन निकलते-निकलते रह गए । लेकिन फिर भी बजाय उनको बुरा कहने के पान की बुराई करने लगा । और पान के गन्दा होने के कारण उसके छूमे से भी मज़बूरी जाहिर की ।

“क्षमा कीजिएगा” उन्होंने पान खाकर कहा, “आप में सभ्यता नहीं है।” यह शब्द उन्होंने कुछ गम्भीरता से कहे।

मैंने कहा “जी हाँ ! आप सही फरमाते हैं, लेकिन मुझको इस पर घमंड है कि पान खानेवाले की असभ्यता का उत्तर असभ्यता से ही दूँ।”

“माशा-अल्लाह !” यह कहकर वे उठे और अपना सूट केस खोलने लगे। मैं अपने साथी से जो गाज़ियाबाद से, मेरे साथ बंठे थे, बातें करने लगा कि इतने में उन्होंने मेरी बाँह पकड़ कर मेरा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करके एक कापी मेरे सामने रखकर कहा, “आप इस लिखावट को पहचानते हैं ?”

मैं कुछ सिटपिटा-सा गया और बुद्धि ने भी कुछ काम न किया। मैंने उन महाशय की ओर देखा, जो मेरे सिटपिटा जाने से आनन्दित हो रहे थे ... मैं घबराने के अतिरिक्त बहुत लज्जित-सा हो रहा था ... बात यह थी कि मेरे सामने मोहमडन ला (मुसलमानों के कानून) की परीक्षा की कापी थी। उस पर लाल रङ्ग में नम्बर इस तरह दिये हुए थे ६५ + १० गोया मैंने सौ नम्बरों में से पचहत्तर नम्बर पाए थे। नम्बरों को देखकर कुछ खुशी-सी हुई थी कि वे बोले “आपने पर्चा बहुत अच्छा किया था और आपको पैसठ नम्बर मिले थे, लेकिन चूँकि आपने कानून की बातों के अतिरिक्त उन तमाम धार्मिक पुस्तकों का भी विवरण दिया था जिन पर कानून की धाराओं और प्रश्न और उत्तर का दारोमदार था, लिहाज़ा मैंने आपको दस नम्बर और दिए थे, लेकिन अब मुझको मालूम हुआ कि आप इस्लामी कानून तो बड़ी चीज़ है, इस्लामी सभ्यता से भी अनभिज्ञ हैं, लिहाज़ा मेरी समझ में तो आपको कुल दस नम्बर से अधिक न मिलने चाहिए।” यह कहकर उन्होंने मेरे और मेरे साथी के सामने लाल पेन्सिल जेब से निकालकर, पैसठ नम्बर को सुर्खी से काट दिए

और वहाँ अपना दस्खत भी कर दिया । अब मुझको टी० एच० अक्षरों के अर्थ भी मालूम हो गये थे, जो मैंने उनके हैन्डबैग पर देखा था !!

यह महाशय मेरे परीक्षक थे !! वे.....मेरी अवस्था जो थी वह तो थी ही मगर मेरे साथी, जो स्वयं विद्यार्थी थे, अत्यन्त चकित और प्रभावित थे । वास्तव में हम दोनों ही हक्का-बक्का थे । अपने सूटकेस में सावधानी से मेरी कापी रखते हुए वे बोले, “कम से कम तीन साल तक तो आप पास ह ने का खयाल ही छाड़ दें, क्योंकि मैं परीक्षक जरूर हूँगा और आप को फेल करूँगा, क्योंकि मेरा खयाल है कि एक असभ्य पुरुष इतने कम समय में सभ्यता नहीं सीख सकता ।” मैं इसका उत्तर भला अशिष्टता से कैसा देता । मेरे तो होश ही उड़े थे । वे एक अपरिचित की भाँति अपना मुख अखबार से छिपाये हुए दूसरी बेच्च पर जा बैठे । थोड़ी देर बाद जब ज़रा दिल की धड़कन कम हुई तो मेरे साथी ने आँख फाड़-फाड़कर बात करना शुरू किया । खुशामद का खयाल ही उन्हें क्या था ! कहने लगे कि “मैं गवाह हूँ, आप इन पर दावा कर दीजियेगा ।” शायद परीक्षक महोदय ने यह सुन लिया । वे अखबार फेंककर बोले—“शायद आप दोनों महाशयों से मैं कानून ज़रा ज्यादा जानता हूँ । जनावमन ! अगर यह सम्भव होता तो प्रत्येक परीक्षार्थी एक गवाह ढूँढ़कर के परीक्षक पर मुकदमा दायर कर देना चाहे । बात सच्ची हो चाहे न हो । मैं, आप दोनों महाशयों को विश्वास दिलाता हूँ कि मेरा फ़ैसला अटल है । आप शौक से दावा करें ।”

मैं तो चुप था, परन्तु मेरे साथी ने उनसे तर्क करना आरम्भ किया, परन्तु थोड़ी ही देर में लाचार होकर मुझे उनका मुँह बन्द करना पड़ा, क्योंकि परीक्षक महोदय गुस्सा हुए जाते थे । थोड़ी देर

की चुप्पी के बाद मेरे ऊपर सहानभूति रखनेवाले मेरे साथी, परीक्षक महोदय को कायल करने की कोशिश कर रहे थे और नमी का पाठ पढ़ा रहे थे । मैं चुप बैठा प्रार्थना कर रहा था कि परमात्मा करे ये राज़ी हो जायँ, परन्तु तोबा कीजिए । “मेरी जान मत खाइए” यह कहकर वे समाचार पत्र पढ़ने में संलग्न हो गये ।

(३)

हाथरस का स्टेशन निकट आ रहा था और मेरे साथी उतरने वाले थे । परीक्षक महोदय अपनी पान की डिब्बिया लेने उठे । उन्होंने डिब्बिया खोलकर एक पान निकाला और मेरे सामने पेश किया । मेरा हृदय तीव्रगति से चलने लगा । मैंने एक निर्दोष बालक की तरह उदास सूरत बनाए उनकी ओर देखा । मेरा हाथ स्वयं पान की ओर बढ़ गया... आप विश्वास करें, मैं पान खा रहा था !!!

“छालिया तो लीजिए ।” परीक्षक महोदय ने बटुआ सन्मुख करते हुए कहा, क्योंकि मैं बगैर छालिया के पान खा रहा था और करीब-करीब समाप्त हो रहा था । अब इनकार करते बड़ा डर लगा इसलिए छालिया लेकर मुँह में डाल ली, वे अपनी जगह फिर जा बैठे और यहाँ छालिया ऐसी मालूम हो रही थी मानों मुँह को कोई छील रहा हो । हालांकि परीक्षक महोदय मेरी ओर देख नहीं रहे थे फिर भी मैंने थूकना उचित न समझा कि कहीं देख न लें ! चूँकि मेरी आदत छालिया अथवा पान खाने की विल्कुल न थी इसीलिए मुझे छालिया एक मुसीबत मालूम होने लगी, लेकिन मैंने चबा-चबाकर उसको सुरमा कर डाला । पान खाने के नियमानुसार इस अवस्था पर पहुँच कर पान खानेवाला थूक सकता है, मगर मुझे शायद मालूम न था, हालांकि यह बात मैंने देखी जरूर थी कि उबाल को लोग थूक देते हैं । थोड़ी देर में छालिया का फाँक रह गया, चूँकि आवश्यकता से अधिक खा ली थी । इसलिए निगल भी न सकता

था । बड़ी देर तक मुँह में फिराता रहा फिर थूकने के लिए पायखाने को बेहतर समझा, ताकि परीक्षक महोदय देख न सकें । वहाँ से जो छालिया थूककर निकला तो वे कुछ जोर से बोले “क्या आपने पान थूक दिया ?”

मैं सन्न से हो गया । मैं बड़ी ही मरी आवाज़ से भूठ बोला और कहा “जी नहीं ।” इस बीच में मेरे साथी, जो एम० एस-सी० के विद्यार्थी थे, मगर मेरे चेहरे को एक दार्शनिक की तरह देख रहे थे—वास्तव में मेरा चेहरा होगा भी इस लायक, क्योंकि घबराहट और परेशानी के अतिरिक्त लज्जा, मूर्खता, दुख और व्यथा मेरे चेहरे से अवश्य प्रगट हो रही होगी, हाथरस का स्टेशन आया और उतर गये ।

(४)

मेरे साथी के चले जाने के बाद अब मैं न मालूम किन-किन विचारों में लीन था... ..खुशामद करूँ... ..कभी की नहीं, बल्कि यों कहना चाहिए कि आती ही नहीं... ..मगर हाथ जोड़ने से काम बन जायगा । अगर न मानें तो उनके चरणों पर मस्तक रख देना चाहिए—फिर विचार किया लाहौल बिला कूवत, अगले साल देखा जायगा, वना फिर नौकरी कर लेंगे... ..ऐसी खुशामद से तो मौत अच्छी ।

दूँडला का स्टेशन आया । मैं आगरा जा रहा था, क्योंकि वहाँ एक बहुत आवश्यक कार्य था । मैं चौंक-सा पड़ा, अब क्या करूँ ? यह प्रश्न था । परीक्षक महोदय कहाँ जा रहे हैं । मुझको कम से कम कानपुर का टिकट तो ले ही लेना चाहिए, चुनाँचे यही किया । टिकट लेकर वापस आया तो देखा परीक्षक महोदय एक महाशय से बातें कर रहे थे जो कि उनके मित्र मालूम पड़ते थे, मैं भी बैठ गया । उन्होंने पान की डिबिया निकाली... ..मैं घबड़ाया, परन्तु लाचारी

थी.....उन्होंने पेश किया और मुझे खुश होकर खाना पड़ा। उन्होंने अपने मित्र से कहा, “क्यों महाशय, पान भी क्या ही अच्छी वस्तु है ?”

उन्होंने उत्तर दिया, “जी हाँ, बिना पान के तो मेरी यात्रा ही कठिन हो जाती है।”

“यही मेरा हाल है” परीक्षक महोदय बोले और फिर मेरी ओर मुड़कर पूछा ‘क्यों महाशय, आपकी क्या राय है ?’ इस प्रश्न से मेरी अवस्था का अनुमान लगाया जा सकता है। परीक्षक महोदय के चेहरे से विजय का आनन्द प्रगट था। मैं एक मूर्ति की भाँति विजित दिखलाई पड़ता था। गला साफ़ करके कहा, “जी हाँ।”

“ओ हो, आप तो पान बड़ी तेजी से खाते हैं—खतम हो गया ! और लीजिए।” बैरिस्टर साहब ने कहा। हालाँकि मुँह का पान समाप्त न हुआ था, पर कैसे कहता कि समाप्त नहीं हुआ और दूसरा नहीं लूँगा। लिया और खाया। मैं चुप था और कुछ आनन्दित भी। बैरिस्टर साहब अपने मित्र से बातें करने में संलग्न थे। वे थोड़ी देर तक बातें करते रहे। मैं सुनता रहा। मुझे यह भी मालूम हो गया कि अब मुझे कहाँ जाना है, इतने में शायद बैरिस्टर साहब ने मेरे कष्टों को भाँप लिया और मेरी साँप-छँछूंदर ऐसी अवस्था देखकर कहा “थूक दीजिए—आप तो छालिया खा रहे हैं।” पान थूक कर मैंने छुट्टी पाई—शुक्र है कि उन्होंने दूसरा पान नहीं दिया।

(५)

कानपुर के स्टेशन पर मैंने बैरिस्टर साहब की सेवा में प्रार्थना की। क्या प्रार्थना की ? मैं स्वयं नहीं कह सकता। क्योंकि न मैंने कुछ कहा और न वे सुन सके। लाचार होकर उन्होंने कहा, “करमाइये.....क्या कहते हैं.....।” बड़ी मुश्किल से मैंने कहा, “मेरा जीवन नष्ट हो जायगा.....मैं कहीं का न रहूँगा।”.....

इत्यादि-इत्यादि.....। इन बातों का संक्षिप्त उत्तर केवल यह था “क्षमा कीजिए, मैं जब एक मरतबे कोई काम कर चुकता हूँ तो राय मुश्किल से तबदील कर सकता हूँ।” यह कहकर वे लखनऊवाली गाड़ी की ओर चले। मैंने भी दिल में कहा “न छोड़ूँगा।” मुझे बैरिस्टर साहब को न छोड़ना था और न छोड़ा। ज़िला जौनपुर के एक छोटे से गाँव में जाना था। रास्ते में मैंने एक शब्द बैरिस्टर साहब से कहा और न उन्होंने। मैं बिलकुल अपरिचित-सा दूर बैठा था। न उन्होंने पान दिया और न बात की। इतना अवश्य था कि वे मुझे कभी-कभी बड़े ध्यान से देख ज़रूर लेते थे। ज़िला जौनपुर के एक छोटे से स्टेशन पर बैरिस्टर साहब और मैं शायद ये दो ही उतरनेवाले थे। बैरिस्टर साहब ने जानबूझ कर शायद मुझे देखा तक नहीं। एक छोटी-सी बैलगाड़ी पर उनका असबाब रख दिया गया और मैंने देखा कि धून-धकड़ में बैल तेज़ी से जारहे हैं। दिन के दस बजे होंगे। मैंने न नाश्ता ही किया था—न भूख ही थी। गाड़ी को देर तक खड़ा देखता रहा कि एकदम से चौंक पड़ा। मैंने यह भी न मालूम किया था कि वह कौन सा गाँव था, जहाँ बैरिस्टर साहब गये हैं, परन्तु एक देहाती ने मुझे कृपाकर यह पता दे दिया कि अमुक गाँव के ज़मींदार साहब की गाड़ी थी। मैंने मज़दूर ढूँढ़ा और उसके सिर असबाब लदवाकर चल दिया।

शाम के चार बजे मैं उस गाँव में पहुँचा। ज़मींदार साहब का पता लगने में क्या मुश्किल थी। थोड़ी ही देर में उनके विशाल कोठी के बाहर खड़ा सोच रहा था कि अब क्या करूँ। मज़दूर के साथ असबाब बाहर छोड़ा और अन्दर घुसा। सामने चबूतरों पर बैरिस्टर साहब पङ्खा के नीचे लेटे हुए थे। दो आदमी और भी कुर्सियों पर लेटे हुए थे। कुछ बातें हो रही थीं। कुछ ठिठका मगर आगे बढ़ा और जैसे नवागन्तुक पहुँचता है, पहुँचा। बैरिस्टर साहब ने

सलाम का जवाब दिया। उठ खड़े हुए और बड़े प्रेम से मिले, पूछा कि असबाब कहाँ है ? नौकर से असबाब मँगाया—एक कमरे की ओर संकेत कर बताया कि जाकर स्नान कर लीजिए और कपड़े उतारिए। मैं भी बेतकल्लुफी से सीधा चला गया। नहा-धोकर निकला तो कमरे ही में दूध का देहाती मात्रा में शर्बत उपस्थित था। शायद बैरिस्टर साहब ने सूरत से ही मालूम कर लिया होगा कि भूखा है। कमरे से निकलकर बाहर आ बैठा। बैरिस्टर साहब ने पान पेश किया जो खाना पड़ा। मैं बिलकुल ही चुप बैठा रहा। यहाँ तक कि दोनों आदमी भी उठकर चले गये मगर इसके पहले कि वह जायँ बैरिस्टर साहब मुझको चार पान खिला चुके थे। वे शायद ध्यान से देखते रहते थे और पान समाप्त होते ही मुझको दूसरा पान दे देते थे। थोड़ी देर बाद, मैं आप से क्या कहूँ कि पान खाते-खाते मेरा क्या हाल हो गया दो-तीन पान तक तो मुँह की हालत ही दूसरी हो गई।

बह बैरिस्टर साहब की ससुराल थी। सन्ध्या समय उनके ससुर महाशय बाहर निकले। उनसे मेरा परिचय कराया गया। रात के आठ बजे तक दामाद और ससुर और हम बैठे बातें करते रहे, पर पान खाते-खाते मेरा जो हाल हो गया, उसको परमात्मा ही जानता है। खाते समय तो मेरा मुँह ही न चलता था, क्योंकि पानों ने भीतर से सारा मुँह जख्मी कर दिया था और फिर उस पर छालिया गोया नमक छिड़कने का काम करती थी। बैरिस्टर साहब ने खाना खाने के बाद मुझे पान पेश करते हुए कहा—“पान भी क्या ही अच्छी वस्तु है।” मुझको कहना पड़ा, “इसके समान दूसरी वस्तु नहीं है।” “खाने को पचाता है और मुँह की गन्दगी को दूर करता है और आनन्द-वर्धक है।” बैरिस्टर साहब ने कहा। “आनन्द-वर्धक भी है ?” मैंने

आश्चर्य से पूछा—“बहुत उम्दा चीज़ है ।” ससुर महाशय बोले,
“लेकिन अति न होना चाहिए ।”

प्रातःकाल मुझे अबसर मिला कि ससुर महाशय से अपनी मुसी-
बत का हाल बयान करूँ । केवल मैं और वह ही थे और अबसर
भी बड़ा सुन्दर था, क्योंकि बातचीत के सिलसिले में स्वयं उन्होंने ही
मेरे भविष्य जीवन के बारे में प्रश्न किये थे । उन्होंने मेरी कहानी
बड़े आश्चर्य से सुनी । वे हँसे भी और मुझसे सिकारिश की प्रतिज्ञा
भी की । इतने में बैरिस्टर साहब भी आ गये । मैं नहीं बतलाना
चाहता था कि क्या बातचीत हुई और क्या हुआ । अन्त में यह तय
हुआ कि मैं चार दिन और ठहरूँ और रात-दिन पान खाऊँ । इन
चार दिनों में मैं क्या बताऊँ, कितने पान खाने पड़े । मुँह का बुरा
हाल था—पान पर पान खाता था और उफ़ तक न करता था ।
चलते वक्त बैरिस्टर साहब ने कहा—“मेरा पान अब आप कभी न
भूलेंगे ।” और वास्तव में हाँलाकि एक वर्ष से अधिक बीत गया,
परन्तु उसकी याद अब तक ताज़ी है और यह शायद कभी न भूले ।
नतीजा यह कि अब खूब पान खाता हूँ ।



अलशजरी

चौधरी साहब से मेरी पहली भेंट उस समय हुई, जब मैं दूसरे दर्जे में पहुँचा। जिस समय मैं दर्जे में गया, तो देखा, कि चौधरी साहब मुर्गा बने हुये हैं। चौधरी साहब को विवश होकर, इस भाग्य-शाली चिड़िया की सूरत-शक्ल थोड़ी देर के लिए धारण करनी पड़ती थी। वे मेरे पास आकर बैठे, और पाठ याद न करने के कारणों और उसके भयानक परिणामों पर बातचीत चल रही थी, कि मास्टर-साहब के डंडे ने इस अस्थायी मिलाप को अस्त-व्यस्त कर दिया। मैं पकड़ा नहीं गया था, इसलिए बच गया, और चौधरी साहब अलग बैठाये गये। यह तो मानों पहली भेंट थी। इसके बाद कालेज तक साथ रहा।

बी० ए० में चौधरी साहब ने हज करने का संकल्प किया। हज करने में सबसे अधिक डर इस बात का था कि हाजिरियाँ कम हो जायँगी और परीक्षा में सम्मिलित होने की अनुमति न मिलेगी। अतः यही हुआ, कि हज से जब लौटकर आये, तो अपना नाम कालिज के नोटिस बोर्ड पर लिखा हुआ पाया उन लड़कों की सूची में, जो कालेज से गैरहाजिर रहने के कारण इम्तहान से रोके जाने वाले थे।

“तनिक विचार तो कीजिए”—चौधरी साहब बोले—“यह जुल्म नहीं तो और क्या है? अगर क्रिकेट की टीम महीने भर के लिए बाहर जाय तो सब को हाजिरियाँ मिलें; अगर लड़के चित्तौर का क़िला और देहली के खंडहर देखने के लिए जायँ तो इतिहास के प्रोफ़ेसर इस सैर-सपाटे को शिक्षा का अङ्ग समझ कर पूरी हाजिरियाँ

करायें। आखिर धार्मिक विचारों को पूरा करने के सम्बन्ध में यदि कोई मदीना शरीफ़ जाये तो उसे क्योंकि पूरी हाजिरियाँ न मिलें ! जिस तरह अन्यान्य विषय, जैसे परिभ्रमण इत्यादि, इतिहास में सम्बन्ध रखते हैं, उसी तरह धार्मिक यात्रा भी एक आवश्यक विषय है।

उनका प्रयत्न व्यर्थ न गया। धार्मिक विषयों के प्रोफ़ेसरो ने चौधरी साहब को पूरी हाजिरियाँ दिलवाई, और परीक्षा में सम्मिलित होने की अनुमति मिल गई।

X

X

X

[१]

हज से पहले वे चौधरी साहब थे। और हज के बाद “अलहजा बुल शजर उल हिन्दी।” बहुत विचार और अनुसन्धान के बाद समस्त अरबी व्याकरण को दृष्टि में रखते हुए मक्का-मदीने में पहुँच कर चौधरी शब्द बदल कर “अलशजरी” या। और यह पवित्र अभिवृद्धि चौधरी साहब के व्यक्तित्व में इस प्रकार छिप गई थी, कि शुद्ध अरब का निवासी तो कोट-पतलून पहन ही सकता है, लेकिन “अलशजरी” विवश थे, और अरबी चोगा, तथा एक विशेष प्रकार का अरबी पहनावा पसन्द करने लगे थे। लेकिन सूक्ष्म दाढ़ी, अरबी पहनावा, और अधिक प्रयत्न के होते हुए भी वे किसी ओर से अरब ज्ञात न होते थे। उनका सारा प्रयत्न अपने को अरब बनाने में बिल्कुल उसी प्रकार व्यर्थ चला जाता था, जिस प्रकार कोई-कोई देशी ईसाई कोट-पतलून पहनकर ग़लत उर्दू साफ़-साफ़ बोलते हैं, और ग़लत अँगरेज़ी विवश होकर। और चेहरे पर सफ़ेद पाउडर भी पोतते हैं, लेकिन असलियत नहीं छिपती और बिल्कुल ऐसा ज्ञात होता है, कि जिस कमरे में क़लई हुई है, उसमें किसी समय अवश्य बाबचोंखाना था। न योरोपीन इन्टर में बैठने से काम चलता है,

और न योरोपान भाव पर चाय खरीदने से । मतलब यही हाल चौधरी साहब का था, कि अरब बनने का सारा प्रयत्न व्यर्थ जाता था ।

मैंने और उन्होंने शिक्षा साथ-साथ पाई थी । दोनों की अरबी जानने की योग्यता भी बराबर थी । यदि वे तेज़ी के साथ कुरान शरीफ़ पढ़ सकते थे, तो एक-एक कर मैं भी पढ़ सकता था । रह गया प्रश्न अर्थ का तो यह कभी निश्चित न हो सका, कि मैं उन पर अधिकार रखता हूँ, या वे मुझ पर । लेकिन हज़ से लौट कर आने के बाद उन्हें बहुत सी चीज़ों की अरबी ज्ञात हो गई थी, और इसकी मेरे पास कोई दवा न थी ।

चौधरी साहब का इतना पुराना साथ ! फिर संयोग की बात, कि साथ ही ईराक की यात्रा का संयोग भी उपस्थित हुआ ।

बग़दाद की गलियों में दो आदमी.....मैं और शजरी..... मारे-मारे फिर रहे हैं । दोनों में से, वास्तविकता इस प्रकार है, कि एक भी अरबी नहीं जानता । नगर की चीख पुकार क्या है ? विश्वास कीजिए, कि मानों चारों ओर भय का फातिहा पड़ा जा रहा हो । मैं और चौधरी साहब दोनों अरबी नहीं जानते, लेकिन फिर भी मुझमें और चौधरी साहब में ज़मीन आसमान का अन्तर है ।

“तुम अहमक हो” —भाई शजरी ने कहा—“अरे मियाँ, अरबी बोलना और समझना इस प्रकार सरल है कि प्रत्येक व्यक्ति, जो हमारी तुम्हारी तरह उर्दू जानता है, और फारसी पर महत्वपूर्ण अधिकार रखता है, बड़ी सरलता से अरबी बोल और समझ सकता है ।”

मैंने परीशान होकर कहा, “ईश्वर साक्षी है । आज तीसरा दिन है, कि बग़दाद आये हैं । लेकिन मेरी समझ में यहाँ का एक अक्षर भी नहीं आता । भगवान ही बचाये, कैसी उल्टी तबीयत है ! तरबूज़ माँगता हूँ तो छुहारे दे रहे हैं, और रोटी माँगू तो पानी । यहाँ से

जल्दी भागना चाहिए । मेरी ताँ उम्र बीत जायगी, और यह अरबी समझ में न आवेगी ।”

इधर मेरा तो यह हाल था और उधर भाई शजरी का यह विचार कि कुछ नहीं, केवल साधारण उर्दू में मिनल, उल, अल, कुम, इत्यादि लगाओ, बस अरबी हो गई । इससे और स्वयं चौधरी साहब की बातों से भी मैं इस बात को मानने के लिए तैयार नहीं था कि वे अरबी जानते हैं । यदि कहीं सड़क पर दो मनुष्यों में झगड़ा या लड़ाई हो रही हो तो चौधरी साहब का कर्त्तव्य होता, कि लड़ाई के कारणों से मुझे परिचित करे और यह प्रगट करें कि अरबी जानते हैं । या फिर यदि कहीं साइन बोर्ड दिखाई पड़ जाय तो असम्भव कि उसका विवरण मेरे सामने न उपस्थित हो । मुझे उनकी ये बातें कहाँ तक तकलीफ न देतीं, जब कि मैं बहुत अच्छी तरह जानता था, कि ये हज़रत मुझसे अधिक अरबी समझने के योग्य नहीं ।

X

X

X

एक दिन की बात है कि हम दोनों मदीने के काजी साहब से मिलने जा जा रहे थे । रास्ते में चौधरी साहब मेरा हाथ पकड़ कर चाय की एक दूकान पर चढ़ गये । चाय की आठ दर्जन प्यालियों का आर्डर दिया गया । मैंने आश्चर्य से चौधरी साहब की ओर देखा । पहली बात तो मुझे इस प्रकार की चाय से कोई दिलचस्पी नहीं, कि फीकी, सीठी, बिना दूध की चाय शीशे की प्यालियों में पी रहे हैं और फिर यहाँ एक, दो नहीं, बल्कि आठ दर्जन चाय की प्यालियाँ आती हैं, जिन्हें मैं किसी प्रकार भी नहीं पी सकता था । मैंने चौधरी साहब से कहा, “आखिर यह कैसी मूर्खता है !” चौधरी साहब तुनक कर बोले—“दाम हम देंगे । तुम क्या जानो ? अरबी समझते नहीं और न यहाँ का भाव ही जानो । देखो, आज हम तुम्हें दिखाते हैं कि किसी देश में जाना और वहाँ की भाषा समझना कितना लाभकर होता

है ।” तात्पर्य कि चाय आई और खूब पी, और बहाई, लेकिन फिर भी बच रही । आखिर कहाँ तक पीते ? जकिन चौधरी साहब ने सबका सब पी डाला ।

जब चाय का बिल सामने आया तो चौधरी साहब सिटपिटाये । लगभग वह डेढ़ पैसे प्रति प्याली माँग रहा था । और चौधरी साहब एक दर्जन प्यालियाँ के दाम एक या डेढ़ पैसे के हिसाब से दे रहे थे । कहाँ एक पैसा प्रति प्याली और कहाँ एक पैसा प्रति दर्जन ! जब गलत सलत अरबी से मामिला न सुलभा तो हजरत शजरी ने दूकानदार का हाथ पकड़कर सड़क पर ला खड़ा किया, और दूकान के खंभे पर जो भाव लिखा हुआ था, उसकी आर दूकानदार के ध्यान को आकर्षित करते हुए कहा, कि जब साफ़-साफ़ भाव लिख रखा है, तब आखिर क्यों अधिक दाम माँगते हो ? दूकानदार ने लिखावट पढ़ी । कुछ चकित हुआ, इधर-उधर देखा । सारे बाजार में इस किनारे से उस किनारे तक सभी दूकानों पर, चाहे वे चाय की हों या खजूरों की, और या गोश्त की, बड़े-बड़े काले अक्षरों में यह इबारत लिखी हुई थी, जिसका उद्गम अनुवाद होता था—“एक पैसे में एक दर्जन प्याली चाय ।” दूकानदार ने कहा, “यह मैंने नहीं लिखा । कोई शरारती सारे बाजार में यही लिखता चला गया । मैं इसका उत्तर-दायी नहीं ।” सहसा मेरे ध्यान में आया, और मैंने चौधरी साहब को हिन्दुस्तान के इसी प्रकार के विज्ञापन याद दिलाये—“एक पैसे में एक दर्जन चाय की प्यालियाँ” या फिर “गर्मियाँ में गर्म चाय ठंडक पहुँचाती है ।” यह रोग ईराक में भी फैला हुआ है । इस नई प्रथा का उत्तरदायी चाय की कम्पनियाँ थीं, न कि चायवाला ।

मैंने चौधरी साहब की अरबी की जानकारी को इसका उत्तरदायी ठहराया । चौधरी साहब का यह कहना, कि “आप कौन होते हैं । दाम मेरे गये या आपके ।” मुझे चुप कर देने के लिए पर्याप्त है ।

(२)

चाय पीकर हजरत काजी साहब के यहाँ गये। दुर्भाग्य से वे न मिले। अपना परिचय कार्ड छोड़कर नदी के किनारे पहुँचे।

ईराक में एक नाव ऐसी भी होती है, जैसे गोला प्याला। सौभाग्य से ऐसी ही नाव मिली। मैं तो चुप खड़ा रहा और चौधरी साहब ने हिन्दुस्तानी अरबी या दूसरे शब्दों में ईराकी उर्दू में मल्लाह से बातचीत करनी आरम्भ कर दी। भगवान जाने उन्होंने क्या कहा, और मल्लाह ने क्या समझा, लेकिन परिणाम इस बातचीत का यह हुआ कि हम दोनों नाव में बैठ गये और नदी की सैर होने लगी। चौधरी साहब ने इस नाव की प्रशंसा के पुल बाँध दिये। कहने लगे, कि “इस नाव में खास बात यह है, कि भँवर अर्थात् चक्करदार पानी में पड़कर भी नहीं डूबती।” मैंने आश्चर्य प्रगट किया तो उन्होंने कहा, कि “देखो अभी इसे भँवर में ले चलेंगे, ताकि तुम स्वयं देख लो।” मैंने कहा, “भगवान के लिए दया कीजिये। मुझे रंचमात्र भी सन्देह नहीं है। आप क्या कह रहे हैं और मैं मानता हूँ, कि यह हलकी नाव हजरत नूह की किशती का मुकाबिला कर लेगी।” लेकिन वे न माने, न माने। बीच नदी के बहाव से कुछ हटकर बड़े जोर-शोर से भँवर पड़ रहा था, जिसे देखने से ही डर लग रहा था। चौधरी साहब मल्लाह से गलत-सलत ईराकी उर्दू बोल रहे थे। चूँकि शब्द अमीक (गहराई) से परिचित थे, इसलिए नदी की पूरी गहराई पर बातचीत चल रही थी। अब मल्लाह से उन्होंने इस भयानक भँवर की ओर उँगुली उठाकर कहा, “लहअज़ीक किशती मन अलगरदाब।” अर्थात् नाव को भँवर में ले चलो। शब्द “गरदाब” पर उँगुली से भँवर की शकल बनाई और भँवर में ले चलने के लिए संकेत किया। मैंने कहा, “भगवान के लिए मेरे ऊपर दया करो।” लेकिन वे मेरी सुनते ही न थे। “ठहरो जी” कहकर उन्होंने मेरा हाथ झटक दिया।

मल्लाह ने न जाने उनसे क्या कहा, जिसे वे बिलकुल न समझे होंगे, लेकिन बातचीत भला कैसे रुक सकती ? अरबी में फारसी और अँगरेज़ी सभी शब्द बोलते चले जाते, चाहे कोई समझे या न समझे, उनकी बला से ।

परिणाम यह निकला, कि मैं चीखता-पीटता रह गया और मल्लाह ने तेजी से नाव ले जाकर भँवर में डाल दी । और नाव ने चक्कर खाकर घूमना आरंभ किया । जब नाव घूमी तो पहले तो मुझे डर लगा । लेकिन फिर आनन्द आया । हम दोनों नाव का किनारा पकड़े हुए नीचे पानी को देखने लगे । यह आनन्द अस्थायी था, और मेरा सिर चकरा गया । मैंने रोकने को कहा, कि इतने में ज़ालिम मल्लाह ने पानी में पतवार डालकर नाव के चक्कर में और अभिवृद्धि कर दी । चौधरी साहब हँस रहे थे । मैंने उनसे कहा, कि “भगवान के लिए बस करो, मेरा सिर फटा ।” मैं यह कह ही रहा था, कि मुझे ऐसा ज्ञात हुआ कि जैसे पानी के धरातल पर उलटा लटका हुआ घूम रहा हूँ । अब चौधरी साहब को भी चक्कर आये । वे वास्तव में अपने को इदृता से संभाल रहे थे । नहीं तो उनका और मेरा एक-सा ही हाल था । वे फिर भी हँस रहे थे । लेकिन मैं तो सिर पटक कर बैठ गया । और ज़ोर से चिल्लाया, कि “भगवान के लिए नाव रोको ।” चौधरी साहब इस विचार में थे, कि जब जी चाहेगा, रोकवा लेंगे । अतः अब उन्होंने स्वयं डगमगाते हुए मल्लाह से भँवर में से नाव बाहर निकालने के लिए कहा । बाँगड़ू मल्लाह ने समझा भी होगा या नहीं, कि फारसी में भँवर को गरदाब कहते हैं, और फिर अल-शजरी और स्वयं उसके अरबी कपड़ों की फड़-फड़ाहट और नदी का शोर और फिर लट्ठू की तरह नाव का घूमना, समझना तो दूर, उसने सुना भी, कि नहीं ! उसने न सुना और न समझा, और न सुनने और समझने का प्रयत्न किया, और खुदा का नाम लेकर दाँतों से

अपने ओठ दबाकर “अयाग” कहकर जोर से पतवार पानी में डालकर नाव को और भी अधिक चक्करदार बना दिया। मैं तो आँखें बन्द करके चिल्लाकर मुँह के बल गिरा और इधर अलशजरी “अलहिका उल शेख” का नारा लगाकर जो अपने स्थान से हटे तो मेरे सिर पर आकर गिरे। उठे और फिर गिरे और लोटन कबूतर की तरह लोटने लगे। एक ओर अपने घुटने तोड़ रहे थे, तो दूसरी ओर अपनी दाढ़ीदार ठोड़ी से मेरी पीठ। उनकी ठोड़ी मेरी पीठ में किस प्रकार लग रही थी इसका अनुमान इससे हो सकता है, कि मैं ऐसे समय में भी पछुता रहा था, कि न्यर्थ मैंने कह-सुनकर उनकी दाढ़ी कम कराई। मैं मुँह के बल पड़ा हुआ बचाये “सजान रबी उल आला” चिल्ला रहा था “भगवान के लिए निकालो।” उधर अब अलशजरी बौखला कर अरबी भाषा में चिल्लाये, जिसका मतलब था, भगवान के लिए भँवर में से बाहर निकालो। “अरे मैं मरा, मैं फिर चिल्लाया-हाय मरा।” इधर इस मुसीबत दानेवाले मल्लाह ने एक बार और पानी में पतवार डालकर जोर से चक्कर की तेजी में वृद्धि कर दी। मेरा यह हाल हो गया, कि सिर फटा जाता था और विश्वास हो गया, कि सिर चकराकर अब मृत्यु उपस्थित हो रही है। चौधरी साहब ने अब दुहाई और तिहाई देना प्रारम्भ किया, और मैं पड़े-पड़े उनके प्रयत्नों का समर्थन कर रहा था। वे चिल्ला रहे थे “ऐ नालायक... बरहम तक... अरे ज़ालिम नाव निकाल।” चक्कर खाकर वे फिर मेरे ऊपर गिरे। मैंने आँख खोल कर देखा, सारा संसार घूम रहा था। चौधरी साहब ने फिर दहाड़कर कहा, “अलहिका उल शेख... अबे उल्लू... कसम खुदा की... बालिल्लाह... अरे मरे... अबे रोक... अरे निकाल... नालायक... बदमाश” लेकिन भगवान का नाम लीजिए, कहीं उन बातों से नाव रुकने वाली थी।

सिर पटक-पटक कर हम दोनों मूर्च्छित हो गये ।

X

X

X

न जाने कितनी देर बाद आँख खुली तो अपने आप को नदी के किनारे विवश पाया । पीड़ा के कारण सिर फटा जा रहा था । सारी चाय नदी में ओला बन चुकी थी ! न चलने-फिरने की शक्ति थी, और न बातचीत करने का सामर्थ्य । बड़ी देर तक इसी विवशता की परिस्थिति में पड़े रहे । बड़े प्रयत्नों के बाद भाई शजरी न जाने किस प्रकार उठकर खड़े हुए कि चारों खाने चित्त गिरे । इधर वह दुष्ट मल्लाह हँस रहा था । और अपनी मजदूरी माँग रहा था । इधर अल-शजरी मजदूरी न देते थे और अपनी चक्करदार अरबी इस दुख की परिस्थिति में क्रोध से बोल रहे थे ।

जब एक फारसी जानने वाले साहब उधर से निकले तो मामिला साफ हुआ । इधर अलशजरी ने मल्लाह की शिकायत की, कि हम दोनों को इसने नाव में ऊपर से नीचे झुलाकर अधमरा कर दिया, और फिर मजदूरी माँगता है । उधर मल्लाह ने कहा, कि “ऐसे लोग भी कम देखने में आये होंगे कि चक्कर के मारे मरे जा रहे थे, लेकिन बार-बार यही कहते थे; कि नाव को और भी अधिक तेजी के साथ नचावो । मेरा स्वयं सिर चकरा गया और मुझे दुगुनी मजदूरी चाहिए ।”

“अरे कम्बख्त चौधरी”—मैंने मरी हुई आवाज में कहा—
“यह तुम्हारी अरबी मेरी जान लेगी । यदि रक्खो, कि यदि मैं मर गया तो यह हत्या तुम्हारे सिर पर होगी ।”

खुलासा यह, कि मल्लाह को मजदूरी देनी पड़ी और हम गधों पर लादकर घर पहुँचाये गये । कलेजा हिल उठा था । और हिलना-चलना अत्यन्त कठिन था । रह-रहकर मैं शजरी को कोसता था, कि मरदूम, तेरी चक्करदार अरबी ने मेरी जान ले ली ।”

तीन चार दिन तक हम दोनों का हाल अच्छा न रहा । शायद हुआ कि प्रायः लोग नाव को भँवर में डलवाकर नृत्य कराते हैं । यह सब कुछ हुआ, किन्तु चौधरी साहब न कायल होते थे और न हुए । वे यही कह गये कि सारी शरारत मल्लाह की थी, और उसने जान बूझकर हमारी लस्सी बना डाली । वा लिल्लाहउल अलम ।

X

X

X

इसी सप्ताह में जब हम दोनों के दिमागों में ठीक-ठीक संतुलन स्थापित हो गया तो ज्योतिष मदीना के काजी साहब के यहाँ पहुँचे । उक्त काजी साहब को इब्नसऊद के हमले के कारण घर छोड़ना पड़ा तो हैदराबाद पहुँचे । वहाँ निजाम सरकार की आर से सौ रुपये मासिक की पेन्शन नियत हो गई । कुछ दिनों तक भारतवर्ष की यात्रा की । फिर ईराक में घर बना कर रहने लगे । उन्होंने अच्छी तरह यात्रा की थी और हिन्दुस्तानियों से उन्हें प्रेम भी था ।

एक फारसी जानने वाले दयालु ईराकी ने हम दोनों को काजी साहब से मिलाया । बहुत शीघ्र संक्षिप्त-सा परिचय करा के चले गये और हम दोनों रह गये । चौधरी साहब ने अपनी आदत के अनुसार गलत-सलत अरबी बोलना प्रारम्भ कर दिया । काजी साहब एक शब्द भी फारसी का न जानते थे । और ठेठ अरबी में बातें कर रहे थे । यदि किसी वाक्य के दो-एक शब्द, जो उर्दू में प्रचलित हैं, मैं समझ लेता तो अनुमान से वाक्य का थोड़ा बहुत अर्थ भी समझ लेता । नहीं तो काजी साहब की बातचीत का समझना अत्यन्त कठिन था, लेकिन भाई अलशजरी कदाचित् मुझसे दुगुना समझ रहे थे । काजी साहब हैदराबाद, बम्बई, लाहौर, दिल्ली, आगरा इत्यादि की सैर कर चुके थे । इतना तो पता चलता था कि इन स्थानों की चर्चा कर रहे हैं । शेष मेरी समझ में कुछ आता न था, लेकिन भाई अलशजरी बीच में बार-बार बोल उठते थे । बहुत सम्भव है, कि वे काजी साहब की

बातचीत को शब्द-शब्द, समझ रहे हों। मेरे सम्बन्ध में वे बहुत पहले ही काजी साहब से यह कहकर प्रसन्न हो चुके थे, कि यह अरबी बिलकुल नहीं जानता, अतः अब काजी साहब भाई शजरी ही की ओर देखकर बातचीत कर रहे थे और यह समझते थे, कि यह सब कुछ समझ रहा है। हलाँकि मैं विश्वास के साथ कहता हूँ, कि वे उतना ही काजी साहब की बातों को समझ रहे थे, जितना कि मैं। 'आगरे' के शब्द के साथ एक ही वाक्य में ताजमहल का नाम आया और इस अवसर पर परिचयात्मक शब्दों को अलशजरी समझ रहे थे, कि ताजमहल स्वयं उनकी सम्पत्ति है, क्योंकि स्वयं आगरे के निवासी थे। खूबियों को प्रकट करना आवश्यक समझा, और काजी साहब से उन्होंने अरबी में कहा, "मैं भी शहर आगरे का रहनेवाला हूँ।" काजी साहब समझ गये। भट्ट उन्होंने कहा, "लेकिन तुम तो अलीगढ़ से आये हो।" मैं भी अनुमानतः मतलब समझ गया, और शजरी भी। इस पर अलशजरी बोले, "अना अहल आगूह तालिबइल्म मन अल हिल अलालूमनी अलीगढ़" काजी साहब "मगर" के होते हुए भी मतलब समझ गये। क्योंकि अलीगढ़ युनिवर्सिटी का नाम सुन चुके थे। शिकाकत के ढङ्ग पर अलशजरी ने कहना चाहा, कि आप आगरे आये, लेकिन अलीगढ़ न आये। शब्द 'आये' को अरबी तो जानते न थे या याद न थी, अतः उसके स्थान पर 'नाज़िल होना' का प्रयोग किया—“हजरत नज़ूल फी अगूह मन अल बम्बई मगर ला नाज़िल अलीगढ़।” काजी साहब समझ गये, और तेजी न आने के कारण बताने लगे, जिन्हें न तो अलशजरी समझे, और न मैं, लेकिन अलशजरी सिर हिला रहे थे और अरबी में बोले, “अलीगढ़ युनिवर्सिटी हिन्दुस्तान और संसार भर में अधिक प्रसिद्ध है।” उसके बाद ही काजी साहब ने पूछा, कि बम्बई से अलीगढ़ कितनी दूर है। अब अलशजरी कुछ चकराये, क्योंकि न तो अरबी गिनती जानते थे और

न मील की अरबी । मैंने सलाह दी, कि अलिफ लैला का अलिफ कोस और मील का काम दे जायगा । उन्होंने .“ठहरो जी” कहकर मेरी बात काट दी, और काजी साहब से बोले, “फासिल तद अल अज़ अलीगढ़ मन अल बम्बई एक लील, व एक नहार ।” ‘एक लील’ और ‘एक नहार’ शब्द को, जिसका मतलब एक रात दिन होता है, उँगली हिलाकर इस प्रकार बताया, कि फारसी न जाते हुए भी काजी साहब मतलब समझ गये कि एक दिन और रात की यात्रा है । मैं भी अलशजरी की योग्यता का समर्थन करने लगा, लेकिन काजी साहब ने भट सर सैयद की तेज़ी से कुछ चर्चा करके एक और टेढ़ा प्रश्न सामने लाकर खड़ा कर दिया । वह यह कि स्वर्गीय सर सैयद की सन्तानों में से कोई है भी, कि नहीं, और है तो क्या करती है । लेकिन अलशजरी तो अब अरबी भाषा के पंडित बन चुके थे । मेरी सलाहों को काटते हुए बोले, कि “ठहरो जी, मुझे अरबी बनाने दो ।” बहुत शीघ्र अलशजरी ने काजी साहब को अरबी में जवाब दिया । अलशजरी के जवाब पर काजी साहब ने पूछा, “कि सैयद महमूद क्या करते हैं ?” अलशजरी ने मेरी सलाह को काटकर इसका भी जवाब अरबी में ही दिया । इसमें सन्देह नहीं, कि अलशजरी का जवाब बहुत ही उचित था, और काजी साहब ने कदाचित् उससे अपनी स्वीकृति भी प्रकट की ।

थोड़ी देर बाद हम दोनों ने काजी साहब से चलने की आज्ञा माँगी, तो काजी साहब ने हम दोनों से जो कुछ भी कहा, उसका तात्पर्य यह था, कि हम रात का भोजन उनके ही साथ करें ।

लौटती बार चौधरी साहब ने रास्ते में अपनी अरबी की योग्यता का सिक्का मेरे ऊ र उमाने का प्रयत्न किया और मेरी नाक में दम कर दिया । उन्होंने अरबी भाषा के व्याकरण के नियमों से उत्तर के लिए उपस्थित की हुई मेरी सभी सलाहों को ग़लत बताया और कई

शब्दों के सम्बन्ध में गहरा वाद-विवाद हुआ। वे कहते थे, कि अरबी है, और मैं कहता था, कि फारसी। परीशान होकर अपना पिण्ड छुड़ाने के लिए मैंने स्वीकार कर लिया कि “निस्सन्देह आपको अनुवादक की सहायता की बिल्कुल आवश्यकता नहीं।” कदाचित् वे और मैं, दोनों नाववाली घटना बिल्कुल भूल गये थे।

[४]

सन्ध्या की नमाज के बाद हम दोनों काजी साहब के यहाँ पहुँचे। दुर्भाग्य से काजी साहब घर पर नहीं थे। हब्शी नौकर, जिसने हमें सवेरे देखा था और जानता था, कि हम लोग निमन्त्रण के सम्बन्ध में आये हैं, बड़ी बुद्धिमानी से पेश आया, और उसने ले जाकर हमें कमरे में बैठाया। हम लोगों का दुर्भाग्य ! हाँ, दुर्भाग्य, कि यह हब्शी चला गया और थोड़ी देर में एक दूसरा हब्शी नौकर आया। यह उस हब्शी से अधिक भयानक और अधिक हब्शी था। मुझे केवल दो चीजों से डर लगता है। हिन्दुस्तान में तो बुलडाग से और ईराक में हब्शी नौकर से। भगवान जाने, हिन्दुस्तानियों को दूसरे ढङ्ग के कुत्ते क्यों नहीं मिलते, और ईराकियों को दूसरे ढङ्ग के नौकर।

जब अधिक समय बीत गया, और निमन्त्रण के चिन्ह दिखाई न पड़े तो मैंने कहा, कि “चौधरी साहब, कहीं भूल तो नहीं हुई। और निमन्त्रण कल रात का तो नहीं है ?” प्रगट भी है, कि निमन्त्रण वाले घर में तो कुछ अपने आप मेहमान को निमन्त्रण के चिन्ह शायद ही जाते हैं। फर्श, रोशनी, मेज, कुर्सी, और दूसरी सारी वस्तुयें जो, घर में दिखाई पड़ती हैं, वे कहती हैं कि “ऐ मेहमान ! आज तो निमन्त्रण है।” लेकिन यहाँ तो मैदान ही ठण्डा था, और कुछ रङ्ग और गन्ध का पता न था। जब मैंने यह सन्देह प्रगट किया, तो चौधरी साहब भी घबड़ाये और विचार करने पर शायद हुआ, कि निमन्त्रण के सम्बन्ध में काजी साहब से जो बातें हुई थीं, उनमें “शब्द रात और

भोजन” तो याद पड़ता था, लेकिन आज या कल का ध्यान नहीं। बहुत याद किया, लेकिन आज या कल का ध्यान नहीं। बहुत याद किया, लेकिन व्यर्थ, न तो आज की अरबी ज्ञात थी और न कल की। यदि काजी साहब ने इन शब्दों का प्रयोग भी किया होगा, तब भी याद न रहा। इस भ्रान्ति को दूर करने के लिए अलशजरी ने उस हब्शी को पुकारा “दावत, या भोजन का निमन्त्रण आज ही रात को है।” उस हब्शी ने हम दोनों को सिर से पैर तक देखा, क्या यह सम्भव है, कि वह विचार कर रहा था, कि हमारा प्रत्यक्ष हमारी वास्तविकता से विभिन्न है? दुर्भाग्य से वह ध्यानपूर्वक यही देख रहा था। लेकिन हम दोनों कैसे उस भेद को जानते? उसने हम दोनों को बार-बार अच्छी तरह आश्चर्य से देखकर कुछ जवाब दिया। मैं नहीं कह सकता कि वह चीनी भाषा बोला, या लातीनी। साफ समझ में न आया, कि क्या बकता है। जब एक दो बार शजरी ने उससे पूछा, और कुछ समझ में न आया तो भाई शजरी बोले, “अना अल हिन्दी वला अलसान अल अरविय इन्तकल उजलत।” बुरा हो, इस अरबी जाननेवाले का, जिसके सामने भाई शजरी इस प्रकार अरबी की टाँग तोड़ें। उनका तात्पर्य यह था, कि हम हिन्दुस्तानी हैं। अच्छी अरबी नहीं जानते। तुम जल्दी-जल्दी बोलते हो। वह कदाचित् समझ गया, और उसने बहुत ही शान्त-भाव से कुछ पूछा, लेकिन वह भी समझना असंभव था। कुछ ऐसा सन्देह अवश्य हुआ, कि खाने के लिए पूछता है। मैंने चौधरी साहब से कहा, कि “भाई अच्छी तरह निश्चय कर लो। केवल अनुमान से काम न लो।” लेकिन वे न माने और सिर हिलाकर कहने लगे, “हाँ हाँ नगम, नगम, नगम।” उसने सच्ची बात समझ कर सिर हिलाया, और संकेत किया। हम दोनों को एक दूसरे कमरे में लाकर बिठाया। इस कमरे में साधारण फर्श था और बहुत ही

उजड़ा-सा कमरा था। मैंने चौधरी साहब से पूछा, कि “आखिर हम यहाँ क्यों बैठे ? इस पर चौधरी साहब ने कहा, कि “इसलिए कि वह कहता है, कि निमंत्रण वाले यहीं बैठेंगे। मुझे बुरा मालूम हुआ, कि चौधरी साहब व्यर्थ अपनी अरबी की योग्यता के सम्बन्ध में नासमझी से काम लेते हैं। मैंने बिगड़कर कहा, कि “तुम ग़लत कहते हो। उसने कभी यह नहीं कहा। तुम खाक नहीं समझे ! व्यर्थ मुझ पर रुआब जमाते हो।” इस पर चौधरी साहब भी बिगड़ गये, और कहने लगे, कि “जब अरबी नहीं जानते तो व्यर्थ मुझसे क्यों उलझते हो ?” भाँय-भाँयकर ही रहे थे, कि एक परात में खाना आ गया। मैंने नरमी से चौधरी साहब से कहा, कि “भाई पूछो तो कि आखिर मामिला क्या है कि आतिथ्यकार स्वयं नहीं हैं ?” कहने लगे, “मैं पता लगाता हूँ।” आप हंशी से पूछने लगे, “कि काजो साहब नहीं हैं ? अपने घर पर कब आयेंगे ? क्या हमारे साथ खाने में शामिल न होंगे ?” वास्तव में अलशजरी की अरबी अरबों की अपेक्षा में अधिक समझता था। भगवान जाने उस हंशी ने क्या समझा ! कुछ न कुछ तो अवश्य समझा। उसने हाथ के संकेत से कहा, “नहीं आयेंगे” और कुछ तेज़ी से बोलकर हाथ के संकेत से हमसे जल्दी खाने को कहा। मैंने अलशजरी से कहा, कि “हमें कदापि इस तरह खाना न चाहिए। क्योंकि यह कोई ढङ्ग नहीं, कि आतिथ्यकार नदारत और हम खाने बैठ जायँ।” इस पर शजरी बिगड़ खड़े हुए, कि “तुम अरबी रहन-सहन से परिचित नहीं हो। यह भी कोई हिन्दुस्तान है, कि उचित रूप में अतिथ्यकार कौर गिनने के लिए अवश्य मौजूद रहे।” मैंने फिर अलशजरी से कहा, कि “एक बार हंशी से कुछ और संकेत ही से पूछो, कि आखिर यह असाधारण बात क्यों हुई ?” “ऐहका उल-शेख” कहकर हंशी से फिर शजरी ने सवाल किया तो वह बिगड़ खड़ा हुआ, और दुष्टता से हाथ को भटके देकर न जाने क्या बकने

लगा । और फिर क्रोध से संकेत में कहा, कि खाना खाओ । अब अलशजरी मुझ पर बिगड़ने लगे, जो मैं कहता हूँ वह तुम नहीं सुनते । इस तरह भी दावतें होती हैं ” फिर हज की यात्रा में इसी प्रकार की एकाध दावत की चर्चा की, जो स्वयं उन्होंने की थी । जब मैंने कहा, कि “किसी लफड़ा ने आकर तुम्हारे यहाँ खाया होगा” तो मुझ पर बहुत क्रोधित हुये और “बिसमिल्लाह” कहकर खाने के लिए हाथ बढ़ाया । ढकने का कपड़ा जो हटाया तो मेरे प्राण उड़ गये । क्योंकि वहाँ रोटी और गोश्त के अतिरिक्त कुछ न था । और यहाँ मैं भूख पर धार रखकर आया था । यह भी कैसा विचित्र खाना है । भगवान प्रत्येक हिन्दुस्तानी को इससे बचार्थे । बाजारों में आप देख लीजिए, बड़ी सी डेग में गोश्त के टुकड़े खोलाये जा रहे हैं । कुछ उचित नमक मिर्च, और एक खास प्रकार का लौंग इत्यादि भी पड़ता है । बस, इस जोशान्दे के साथ रोटी खाई जाती है । बूटी हड्डी से कोई मतलब नहीं । जब डेग का पानी कम हो जाता है, तो और डाल दिया जाता है । लेकिन कदाचित् एक बार के अतिरिक्त फिर नमक तो पड़ता नहीं । क्योंकि साधारणतः गोश्त के पानी का फीका होना आवश्यक है । मतलब यह कि गोश्त का पानी था, जिसका लबालब भरा हुआ बड़ा-सा प्याला बाजार से दो पैसे में आ सकता था । मैंने निराश होकर अलशजरी से कहा, “भाई यह मुझसे नहीं चलेगा । कौन जानता था, नहीं तो घर से खाना खाकर आते ।” अलशजरी ने इस पर एक बनावटी कह-कहा लगाया, “सुभान उल्लाह” उन्होंने कहा, “और आप क्या समझे थे ? क्या मीठा पुलाव.....जनाब ये तो अरब लोग हैं । वर्तमान सरदार की दावतों का हाल पढ़ लो । जो मौजूद होता था, सामने रख देते थे ।” मैंने कहा, “भाई ! तुम भी विचित्र आदमी हो । इस भलेमानुस काजी को केवल दावत ही के सम्बन्ध में वैराग्य प्रदर्शित करना रह गया है, नहीं तो साज-सामान,

फर्नीचर, झाड़ू फानूश, फर्श सब कुछ है । लाहौल भेजो ऐसी दावत पर और घर चलो ।” लेकिन अलशजरी इस पर धार्मिक रङ्ग चढ़ाने लगे, और सन्देह प्रगट किया, कि आश्चर्य नहीं, कि इसी सम्बन्ध में हम दोनों जहन्नुम भेज दिये जायँ । तात्पर्य यह कि हम दोनों ने खाना प्रारम्भ किया । मुझसे दो कौर से अधिक न खाया गया । वे अरबों की सादगी पर व्याख्यान दे रहे थे, और मैं शोरवे की सादगी पर व्याख्यान दे रहा था, जो बहते हुए पानी से भी पतला था । मेरी समझ में इससे हाथ मुँह धोना बिलकुल ठीक होगा । तात्पर्य कि मैं खाना न खाकर खाने से खेलने लगू । मैंने निश्चय कर लिया था, कि मैं घर जाकर खाऊँगा । लेकिन अलशजरी मानों हठ पर हठ कर रहे थे । आउट होने से पहले ही लम्बे डील-डौल के दो अरब आ पहुँचे । भाई शजरी ने झट हाथ के संकेत से “भड़ाउलत आम” अर्थात् आइये, खाना खाइये, कहकर उनका स्वागत किया । अपने हिन्दुस्तान में कायदा है, कि ऐसे अवसर पर भूखे भी हो तो कह देते हैं, कि “बिसमिल्लाह कीजिये, खुदा और अधिक दे ।” लेकिन इराक में भूख न भी लग रही हो तो भी आपका आधा भोजन आप के कहने से पहले ही खा जायँगे । झट वे दोनों खाने लगे और वह भी शार्ट हैन्ट में । क्योंकि बस चार कौर में ही मैदान साफ कर दिया । इतने में शब्शी नौकर आया और इससे उन्होंने बिना किसी बनावट के खाने को कहा । बड़ी तेजी से उन दोनों ने हव्शी से कुछ बातें की, और फिर हम दोनों की ओर घूर कर इस प्रकार देखा, कि बस खा ही तो जायँगे । इधर दूसरी ओर से इस नालायक हव्शी ने आँखें नचाना प्रारम्भ किया । मैं कुछ घबड़ाया, और अलशजरी भी चकराये, कि इतने में एक अरब ने क्रोधित होकर अलशजरी से तेजी से कहा, “हिन्दी मनकार अउल अललबक ।” अलशजरी तेजी से अप्रसन्न होकर बोले, “अना अहल अल सलाम” इस पर वह फट

पड़ा और दूसरी ओर से हन्शी ने अपने दाँत चमका-चमका कर मानों व्यंग्य करना प्रारम्भ किया। बड़ी तेजी से दोनों अरब और हन्शी हम दोनों को ताने सुना रहे थे। लेकिन भाई अलशजरी भी किसी से कम न थे। और अपनी बेतुकी उड़ा रहे थे। हम काजी साहब के मित्र हैं। हमें आज रात में खाने के लिए निमंत्रित किया गया। तुम असभ्य हो। तुम हमारा अपमान करते हो। इस भगड़े की चर्चा हम काजी साहब से करेंगे। इत्यादि-इत्यादि।” मेरा विचार है कि, यदि कहीं जल्दी से खाना न आता तो मार-पीट तक की नौबत आ जाती, और आश्चर्य नहीं, जाँ हम और अलशजरी दोनों मृत्यु का प्याला पीते। अरबों की भी तर्बायत विचित्र है। आदमी से लड़ाई उनकी नहीं होती, बल्कि बात की लड़ाई होती है। उधर ये बिलकुल सभ्य बन गये। हम दोनों को इन दोनों ने जबर्दस्ती प्रसन्न करके खाना प्रारम्भ किया। मैंने तो एक कौर उठाकर हाथ खींचा, लेकिन भाई अलशजरी ने और खाया।

इतने में काजी साहब आ गये, तीन-चार मित्रों के सहित। इन दोनों अरबों ने दौड़कर उनसे सलाम आलेकुम की और झट चल दिये। काजी साहब के साथ हमारे वे फारसी जानने वाले ईराकी दुभाषिया भी थे। जिन्होंने हमारा काजी साहब से परिचय कराया था। जब सब आकर दूसरे कमरे में बैठे तो भाई अलशजरी ने भोजन करने के समय जो बुरे व्यवहार किये थे, उनकी बड़ी शिकायत की और विशेष कर उस हन्शी की। वे बहुत आश्चर्यान्वित हुए, कि “तुम खाना कैसे खा चुके ! खाना तो अब आयेगा।” अब मैं अलशजरी की ओर देखता हूँ, और वे मेरी ओर।

काजी साहब हन्शी पर आग बबूला होकर मानों बरस पड़े। यदि किसी ने भयानक अरब को देखा है, तो समझ लीजिए, कि उसने भयानक शेर को देखा है, और फिर जब कि अरब के अतिथि

का अपमान किया हो। लेकिन हब्शी ने जो जवाब काजी साहब को दिया, उससे वे केवल शान्त ही नहीं हो गये, बल्कि उनका क्रोध दूर हो गया और लज्जित होकर वे क्षमा माँगने लगे।

खुलासा यह कि उन फारसी जानने वाले सज्जन ने बहुत शीघ्र मामिला साफ कर दिया। वास्तव में बात यही थी, कि बाहर दोपहर को काजी साहब को दो भिखमंगे मिले थे, और उनसे काजी साहब ने खाने के लिए कहा था, कि शाम को पहले समय आकर खाना खा जाना। इधर इस हब्शी से कह दिया था, कि शाम को दो भिखमंगे आयेंगे, उन्हें खाना खिला देना। पूर्व, इसके कि वे दोनों याचक पहुँचें, हम दोनों जा पहुँचे, और फिर भाई शजरी की अरबी की योग्यता! हब्शी ने अलशजरी से जब पूछा, कि “क्या तुम वही दोनों हो, जो बाज़ार में काजी साहब से मिले थे और खाने को कहा था?” इसका उत्तर अलशजरी ने केवल इस कारण से प्रमाणिकता से दिया था, कि हब्शी की बातचीत में यदि वे कोई शब्द समझे थे, तो वह “तआम अर्यात् भोजन” का था।

जब दोनों याचक आये, और उन्होंने हब्शी से खाने को कहा, तो एक ओर तो हब्शी अप्रसन्न, कि हम दोनों ने उसे धोखा दिया, और दूसरी ओर वे याचक नाराज़, कि हम दोनों का खाना ये दोनों धोखा देकर खा गये।

इस नासमझी का सबसे अधिक नुकसान भाई शजरी ने उठाया जो पेट भर खा चुके थे। क्योंकि जब दस्तरख्वान (भोजन करने का कपड़ा) लगा और उस पर बाईस प्रकार के खाने, जैसे अज्जीर की खीर और पकवान इत्यादि चुने गये, तो मैंने खूब डटकर खाया और भाई शजरी को देख रहा था, कि उनका हाल दया के योग्य था।

X

X

X

चौधरी साहब इस भयानक दावत के बाद कुछ दिन तो अनुत्तर

रहे । स्थान-स्थान में मैं उन पर फिकरे कसा करता । लेकिन बहुत शीघ्र भूल गये और फिर वही आदत कि समझे या न समझे, लेकिन अरबी बोलना न छोड़ते ।

एक दिन की बात है, कि तीन अरब मित्र हमारे यहाँ आये । उन्हें अलशजरी ने केवल अरबी बोलने के विचार से मित्र बना लिया था । मैं इनसे अधिक परीशान था । क्योंकि ये तीनों बिल्कुल उजड़ु थे । और जो कुछ भी पाते, ढूँढ़ कर खा जाते ।

मेंथी का साग और कीमा, जो हिन्दुस्तान की अपूर्व चीज़ है, एक दिन सब का सब पका हुआ खा गये और फिर सम्मान उसका यह किया, कि उसको घास और गोशत कहते । तात्पर्य यह कि मैं उनकी बुरी आदतों से परीशान था ।

ये तीनों आये और अलशजरी से माथा-पञ्ची करने लगे । भाई शजरी के शिर में बड़े ज़ोर की पीड़ा थी और वे रुमाल बाँधे हुए थे । इन नालायकों ने अलशरी से कुछ कहा, जिसे किसी न किसी प्रकार हम दोनों समझ गये । वे कहते थे, “कि पास ही पड़ोस में एक हकीम रहता है । वहाँ चलो । अभी-अभी सिर की पीड़ा दूर हो जायगी ।” “अन्धा क्या चाहे, दो आँखें ।” शजरी सहमत हो गये । हम दोनों उन तीनों के साथ वहाँ पहुँचे । यह हकीम भी बेवकूफी की सी सूरतवाला और विचित्र ढङ्ग का था । अनाड़ी मालूम हाता था । एक बड़े से तख्त पर बैठा था । अलशजरी ने नाड़ी दिखाई और जिस प्रकार भी हो सका, अपना हाल बताया । उसने जो कुछ कहा, उसका मतलब यह था, “कि पीड़ा तो अभी जाती रहेगी ।” लेकिन साथ ही न जाने क्या और उसने कहा । न मैंने समझा, आर न अलशजरी ने । लेकिन भाई शजरी ने मुझसे कहा, कि भाई तुम नहीं समझे । यह वास्तव में यह कह रहा है, कि दवा कुछ कड़ु सी होगी । यदि तुम स्वीकार करो तो चिकित्सा करूँ, नहीं तो न करूँ ।”

चिकित्सा की तकलीफ पीड़ा की तकलीफ से अच्छी है। फिर इन तीनों अरबों ने कहा, “कि दवा पिलाने में या चिकित्सा कराने में हम तुमको पकड़ लेंगे।” मैं उस समय तो भाई अलशजरी की अरबी की योग्यता को मान गया, क्योंकि जब दूसरी बार उन्होंने कहा, तो मुझ अभागो की भी समझ में यही आया, कि अलशजरी ने ठीक समझा है। अब भाई शजरी का माथा देखने के लिए उन्हें तख्त पर सुला दिया गया। तख्त पर चित लेट गये और मैं बराबर खड़ा था। मैंने अलशजरी से कहा, कि “यह क्या मामला है? तुमको लिटाया क्यों है? दवा तो बैठ कर पी जाती है। ज़रा पूछो तो कहीं कुछ का कुछ न समझ लिया हों!” इस पर अलशजरी कुछ कड़े होकर बोले, “तुम समझते हो नहीं! भगवान जाने, हर बात में देखल क्यों देते हो? वह पहले माथा देखेगा या कुछ और देखेगा।” मैं चुप हो रहा! इतने में इस गर्दननापी हकीम ने एक गन्दा-सा चमड़े का बेग निकाला। उसमें से एक विचित्र दाँतीदार लोहे का सूजा निकाला और उसको सँभालकर उसने इस प्रकार चौधरी साहब का सिर पकड़ कर आँखों के सामने नचाया, कि जैसे उनकी आँख फोड़ना चाहता है। मैं कम लेकिन शजरी अधिक घबड़ाये। वे तेज़ी से आँख बचाकर उठे, कि कहीं नोक आँख में न लग जाय। लेकिन पूर्व इसके, कि वे उठ सकें, वे तीनों खुरपे, जो कदाचित् हकीम के संकेत की पहले ही से प्रतीक्षा कर रहे थे, हकीम का संकेत पाते ही भाई शजरी पर टूट पड़े। मैं घबड़ाया, और समझा, कि अवश्य कोई जाल है। इधर अलशजरी ने एक पर्वत भेदी चीत्कार मारकर छुड़ाने का प्रयत्न किया। प्रत्यक्षतः गुत्थम-गुत्था होने लगी, और तख्त मानों अखाड़ा बन गया। अरबी लबादे उड़-उड़कर इस बलवे में ऐसे शात हो रहे थे, जैसे कम्बल के नीचे मेढ़े। “अरे मुझे बचाओ.....भगवान के लिये.....कम्बल.....बदजात.....दौड़ो.....हत्या.....हत्या.....!”

भाई शजरी ने आकुल होकर ये शब्द कहे, कि मैं भी बौखला गया । अपने प्यारे मित्र को इन दुष्टों से बचाना मेरा कर्त्तव्य था । इस धमाचौकड़ी में मैं भी सम्मिलित हो गया ? मैं भी दौड़ पड़ा और पहले ही हमले में मैंने हकीम को अड़ङ्गा लगाकर चित किया । लेकिन वह असावधानी से गिर गया था और उसने बहुत जल्द उठकर मुझको अलग फेंका । लेकिन चूँकि जान का सवाल था, अतः भट उठकर मैंने फिर आक्रमण किया । भाई शजरी बड़े ज़ोरदार थे और किसी प्रकार चार मज़बूत अरबों से भी काबू में न आते थे । भाई शजरी पुकार रहे थे, “रहम……अनाउल कतल……ऐ पाजी……नालायकों……मेरी कुहनी टूटी……उल्लू……गधों……नालायकों……पाजी……पाजियों……अरे छोड़ो……।” खूब कुश्तम कुश्ता हो रही थी, और इधर मैं भी गुथा हुआ था । एक अरब की कमर पकड़कर उसे गिराने के लिए असफल प्रयत्न कर रहा था । कुश्ती के कई दौंव जानता हूँ, लेकिन वहाँ तो अरबी कपड़ों में पता ही न चलता था, कि हाथ किधर है, और टाँग किस ओर । और फिर आदमी भी मुसन्डे थे । इसी प्रयत्न में हाथा पाई करने में इस अरब की कुहनी मेरी आँख में इतने ज़ोर से लगी, कि मैं घबड़ाकर गिरा । अब भला मैं क्या लड़ता ? इन दुष्टों ने साफ साफ अलशजरी को चित कर दिया, और छाती पर चढ़ बैठे । फिर अत्याचार यह ढाया, कि कुश्तम-कुश्ता में इन पीड़कों ने भाई शजरी को न जाने किस नोकदार चीज़ पर लिटाया था कि वह बुरी तरह उनकी पीठ में गड़ रही थी और वे अधिक आकुल थे । “अरे मेरी पीठ के नीचे कोई बड़ी-सी चीज़ है……अरे ज़रा तो छोड़ो……करवट ही लेने दो……कसम खुदा की, मैं मरा……अबे गधो……ज़ालिमों……जानवरों” इत्यादि इत्यादि । मैं आँख पकड़े बैठा था, और भाई शजरी की जान बचाने में असमर्थ था । जब शजरी विवश

कर दिये गये तो कुश्तम-कुश्ता बन्द हुई और अब उन्हें केवल पीठ में किसी तेज चीज़ के चुभने की शिकायत थी और मुँह भी विश्वास-सा हो गया, कि शजरी की हत्या-वत्या नहीं हो रही है, कि इतने में वे चिल्लाये—“अरे मेरी आँख फूट जायगी.....आँख फूट जायगी.....” मैं एक आँख बन्द किये हुए कठिनाई से चकराता हुआ उठा। दूसरी आँख से मैं देखने लगा, कि क्या हो रहा है। क्या देखता हूँ कि वे दुष्ट शजरी की जान पर तुले हुए हैं। वे बुरी तरह पकड़ में थे और अब एक विचित्र कार्रवाई हो रही थी। वह यह, कि उनका मस्तक उसी सूजे से बिलकुल हरी दूब की तरह गोदा जा रहा था। अब वे इस डर के मारे बिलकुल हिलते-डुलते भी न थे, कि कहीं हाथ चूक जाय, तो आँख न जाती रहे, मैंने कहा, कि इतना ही अच्छा है, और समझ गया, कि यह चिकित्सा हो रही है। बहुत शीघ्र उसका मस्तक लहू-लुहान हो गया। बड़ी तेज़ी से खून पोंछ कर एक कपड़ा भिगोकर बाँध दिया गया, और अलशजरी छोड़ दिये गये। “अरे कम्बख्तों, तुमने मुझे किस चीज़ पर लिटाया, कि मेरी पीठ में छेद कर दिया।” यह कहकर कराहते हुए अलशजरी उठे। क्या देखते हैं, कि मिलर के ढङ्ग का एक छोटा सा ताला है, जिसमें उसकी कुञ्जी पर, दूसरी चाभियों के लच्छे सहित शजरी को चित लिटाकर तीन अरब उनकी छाती पर कोदो दल रहे थे। क्रोध में आकर भाई शजरी ने इस दुष्ट ताले को कुञ्जियों सहित भन्नाकर दूर फेंका और फिर उर्दू, अरबी और फारसी को मिलाकर न जाने इन तीनों अरबों और हकीम को क्या कुछ न सुना डाला। इधर हकीम खड़ा मुसकुरा रहा था। और अपनी कार्रवाई पर प्रसन्न होकर नमक छिड़क रहा था।

बहुत शीघ्र मामिला साफ हो गया। न बेचारे हकीम का अपराध था और न इन तीन अरबों का। यदि अपराध और भूल थी, तो

स्वयं भाई शजरी की। दुभाषिये का काम पूरा करने के लिए एक हिन्दुस्तानी आ गए। ज्ञात हुआ, कि बेचारे हकीम ने सब कुछ भाई शजरी को समझा दिया था कि किस प्रकार सूखे से मस्तक गोदा जायगा, और अधिक कष्ट होगा, लेकिन पीड़ा बिलकुल जाती रहेगी। फिर यह भी बता दिया गया था, कि ये चारों तुम्हें पकड़ लेंगे। बल्कि हकीम को शिकायत थी, कि मैंने चिकित्सा में सहायता न पहुँचाकर बड़ी गड़बड़ की। क्योंकि मैंने अड़झा लगाकर हकीम को चित गिरा दिया था। इन सम्पूर्ण बातों को हकीम ने अच्छी तरह समझा दिया था और शजरी ने अपनी स्वीकृति भी प्रकट की थी। फिर अब शिकायत कैसी ?

मेरी आँख में पीड़ा हो रही थी। नहीं तो मैं बुरी तरह अलशजरी की वहीं खबर लेता। हकीम की फीस देनी पड़ी। आप स्वयं अनुमान लगा सकते हैं कि, इस लड़ाई-झगड़े के बाद भला सिर की पीड़ा का क्या काम ? पता तक न रहा। हाँ, तख्त पर कुश्ती करने के कारण घुटनों में अलबत्ता बहुत चोटें आई थीं, जो पहले ही से नाक गिरकर चोटीले हो गए थे। लेकिन ये चोटें एक ओर और उस निकम्मे छोटे ताले ने पीठ में जो आरा चलाया था, उसकी पीड़ा एक ओर। बस, घाव नहीं हुआ था, नहीं तो इस छोटे से ताले की कुञ्जी मांस में घुस गई थी और यदि कहीं इस आपरेशन में थोड़ी देर भी और लगती तो आश्चर्य नहीं, कि वह मांस को भेदकर भीतर घुस जाती।

वह दिन और आज का दिन ! शजरी का अरबी बोलने का शौक ऐसा हवा हुआ, कि फिर कभी अरबी नहीं बोलें। जितने दिन ईराक में रहे, दबे रहे और यदि कहीं अवसर आता तो यही कहते, कि “भाई कुछ समझे नहीं। बिना दुभाषिये के काम न चलेगा।”

फकीर

[१]

एक दिन की बात है, कि गुसलखाने से नहाकर जब मैं बरामदे में निकला तो किसी फकीर ने सड़क पर से खिड़की के बाँस की तालियों के पर्दे में शायद परछाईं या जुम्बिश देखकर आवाज़ दी— “माई तेरे बेटा होवे.....।” यद्यपि न तो यहाँ कोई माई थी, और न किसी को यह धबड़ाहट थी, कि बे मतलब एक और लड़का पैदा हों। वास्तव में यह फकीर उनमें से था, जो माँगना भी नहीं जानते। जरा इस अहमक से कोई यह पूछता कि मूर्ख, यह कौन-सी मुद्दिमानी है, कि किसी छेद में से भी कोई हिलती चीज़ देख पाई और बेटा बेटी बाँटना प्रारम्भ कर दिये। फिर मेरा फकीरो से वैसे भी विरोध है, क्योंकि जब कभी मुझे कोई फकीर मिलता है, और मैं उसे देखता हूँ, तो उसे ऐसा पाता हूँ कि मेरे ऐसे दो के लिए काफी हो। फिर भी मैंने खिड़की की छड़ों में से चिक उठाकर इस विचारे से देखा, कि इससे यह क्यों न पूछा जाय, कि नौकरी करेगा।

लेकिन जब मैंने देखा, तो दया के योग्य एक जीव को पाया। एक भूख का मारा हुआ मृतप्राय बुढ़ा चीथड़े लिपेटे हुए दीनता और विवशता का जीवित चित्र था। सच है, इन लोगों को माँगना भी नहीं आता। न तो वे कोई अच्छे गीत जानते हैं, न कोई लय जानते हैं। बस लिए, और दाँत निकाल दिये। यह दिखाने के लिए कि देखो हम भी इस संसार में रहते हैं, और इस प्रकार रहते हैं।

मुझे उसकी दयनीय अवस्था देखकर बड़ा रहम आया और मैंने उससे कहा, कि घूमकर मुख्य द्वार पर आ जाय।

सवेरे का समय था। मैं तो चाय पीने लगा, और घरवाली से कहा, कि एक बहुत ही दया का पात्र फकीर आया है। उसे दो-चार पैसे दे दो, और सवेरे का समय है, दो टोस्ट और एक प्याली चाय दे दो।

मुमडंडे फकीरों से मुझे जितनी घृणा है, उससे दुगुनी घृणा मेरी बीबी को है और उसी अनुताप से उन फकीरों अर्थात् गरीबों से प्रेम है, जो वास्तव में दया और सहानुभूति के इच्छुक हैं।

बीबी ने फकीर का आना सुनकर जल्दी-जल्दी दो गरमा गरम टोस्ट को अँगीठी पर सेंककर खूब मक्खन लगाया और एक प्याली में काफी दूध डालकर चाय बना दी और उसके अतिरिक्त कुछ मिठाई भी रख दी और तश्तरी में चार पैसे रख दिए और लड़के से कहा, कि फकीर को मुख्य द्वार के भीतर अर्थात् बरामदे में बैठाकर खिलादे।

[२]

अब भाग्य मेरा तो देखिए, कि वह गरीब भिखारी जिसे मैंने बुलाया, मुख्य द्वार के पीछे थे। घूमकर आजाना उसके लिए कठिन हुआ, या आते समय किसी दूसरे से माँगने लगा होगा, या फिर अपनी राह खोटी न करना चाहता होगा। सारांश वह तो आया नहीं, और उसके बदले फाटक में एक दूसरे फकीर साहब आये और अपनी आवाज़ लगाने भी न पाये थे कुत्तों ने उसका स्वागत किया। उनके पास एक मोटा-सा डंडा था। उसने दो-चार हाथ घुमाने न पाए थे, कि लड़का जलपान लेकर पहुँचा। क्या देखता है, कि एक फकीर साहब गले में माला डाले—मोटा-सा फकीरी दङ्ग का डंडा, फकीरी दङ्ग का कपड़ा, गले में भोल्ली, हाथ में एक प्रकार का मिट्टी का प्याला—तहमद बंधि मौजूद हैं। उसने कुत्ते को डाँटा, और कहा, साईं जी बरामदे में आ जाओ। साईं जी ने अपने लिए बहुत

अच्छा समझा, और नाश्ता आरंभ किया और इधर मैंने बीबी से कहा, कि पुराना स्वेटर, और एक कमीज फकीर को और भेज दो । सर्दों का मौसम है, और बेचारा मर रहा होगा । जाड़े में बीबी ने जल्दी से एक कमीज और पुराना स्वेटर लिया और लड़के को दिया । मैंने लड़के से पूछा, कि फकीर क्या कहता है ? लड़के ने कहा खूब दुआयें दे रहा है और खा रहा है । लड़का कमीज और स्वेटर लेकर पहुँचा और उसे भी फकीर साहब को भेंट किया । इतने में मैं चाय पीकर इसलिए बाहर पहुँचा, कि फकीर को गरम कपड़े पहनते हुए देखने से जो प्रसन्नता प्राप्त हो सकती है, उससे आनन्द उठाऊँ !

[३]

मैं बाहर पहुँचा तो क्या देखता हूँ, कि एक हट्टा-कट्टा तगड़ा फकीर डकारें ले रहा है और स्वेटर, कमीज, हजारों दुआओं के साथ लिपेटकर भोली में रख रहा है । वास्तव में यह मुसंडा केवल एक सीना खुली फकीरोंवाली कफनी पहने था और ऐसा जान पड़ता था, कि सबेरे की ठंडी हवा से आनन्द उठा रहा है । छाती बिता भर ऊँची, डाढ़ी मुड़ी हुई, बल्ले चढ़े हुए, मुझे देखते ही हजरत लगे मुझे दुआयें देने ।

अब मैं आपसे क्या अर्ज करूँ ! सारा खाया-पीया खून हो गया ! जान सुलगकर रह गई । जी में तो यही आया कि इस आभागे का मुँह नोच लूँ । डण्डा और प्याता उठाकर लगे हजरत दुआयें देकर चलने । दुआवां में अतिशयोक्ति और सीमालंघन से मेरा मन और खाक हो उठा । इतने में बीबी ने भी भाँककर देखा । वहाँ भी यही हाल हुआ । अब बताइये क्या किया जा सकता था ? यह असंभव था, कि मैं इन हजरत को इसी प्रकार अत्याचार ढाकर चला जाने दूँ । मैं इसी असमंजस और द्विविधा में था, कि मेरे एक मित्र भी आ

गए । मैंने दो शब्दों में फकीर की दुष्टता बयान की, और फिर फकीर से कहा—

“तुम्हें लज्जा नहीं आती.....!”

मूर्खता तो देखिए कि ये हज़रत इस रिमार्क को सुनकर अपने तहमद की ओर आकर्षित होकर, केवल मेरी उद्विग्नता पर दया करने के विचार से उसे कुछ नीचा कर लेते हैं ।

“कम्बख्त!”—मैंने और भी जलकर कहा—“इतने मोठे-तगड़े होकर भीख मांगते हो ! बड़े शर्म की बात है ।”

इसके उत्तर में फकीर साहब ने अपने जन्मजात अधिकारों को दुहराते हुए उनसे विनम्रता-पूर्वक विवशता प्रगट की । और अब मैं यह सोचने लगा, कि क्या यह संभव है, कि इस दुष्ट से कम-से-कम स्वेटर और कमीज़ ही छीन ली जाय । मेरे मित्र ने कहा, कि यह उचित नहीं है । लेकिन वे हज़रत, किसी ने कहा है, “गम दर्द उससे पछि, जिसके हृदय में टीस हो ।”

मैंने कहा, कि चाहे इधर की दुनिया उधर हो जाय, इस दुष्ट को ये चीज़ें कभी-कभी न पचने दूँगा । मैंने अब उस गरीब की खोज कराई । नौकर उसे ढूँढ़ने गया, और मैंने इधर फकीर साहब को लिया आड़े हाथों । मैंने कहा—

“तुम नौकरी क्यों नहीं करते ?”

वह कुछ जलकर बोला—“आप ही रख लीजिए ।”

मैंने शीघ्र स्वीकृति प्रकट की, और दस रुपये मासिक तथा, खाने पर नौकर रखने के लिए कहा । फकीर साहब इसके उत्तर में बोले—

“और घरवालों को विष दे दूँ !”

मैंने कहा,—“क्यों ?”

वह बोला—“आप दस रुपये देते हैं। ढाई आने का तो रोज़ गाय चारा खाती है, और एक बीवी और तीन बच्चे। पाँच रुपये में निर्वाह कैसे हो ?”

“गाय भी तुम्हारे पास है ?”—मैंने हैरत के साथ कहा।

वह बोला—“दो रुपया महीना चरानेवाला लेता है। गाय न हो तो साहब, काम कैसे चले ?”

“काम कैसे चले ?”—मैंने आश्चर्य से कहा—“हमारा काम कैसे चलता है।”

वह बोला,—“साहब आप बड़े आदमी हैं। हम भला कहाँ से पैसे लायें; जो रोज़ तीन सेर दूध खरीदें।”

“तीन सेर !” मैंने आश्चर्य-चकित होकर कहा—“तीन सेर ! भाई तीन सेर का खर्च कैसा ?”

शत हुआ, कि मजे से स्वयं हजरत दो सेर दूध प्रतिदिन पीते हैं। मैं पुनः वेतन के प्रश्न पर आया, तो तज़्जी की शिकायत करते हुए तीस रुपये मासिक का खर्च घर का बताया और मेरी बातों को मानते हुए कहा कि यदि कम या ज्यादा किसी रोज़गार में इतनी कमाई हो जाय कि तज़्जी से भी घर का खर्च चला जाय तो फकीरी छोड़ने को अभी-अभी तैयार हैं।

अब मैं अपने मित्र की ओर देखता हूँ, और वे मेरी ओर। इतना पता चला, कि हजरत दोपहर में खाना खाने के बाद अवश्य सोते हैं, और किसी हालत में भी दोपहर में तो काम नहीं कर सकते। वैसे प्रत्येक प्रकार से कोई व्यवसाय, धन्धा, नौकरी तात्पर्य जो भी बताओ, उसके लिए तैयार हैं। अब आप ही बताइए, मैं इस दुष्ट को क्या उत्तर देता ? मेरी अजीब हालत थी। इतने में नौकर आया। अधिक ढूँढ़ने पर भी वह ग़रीब न मिला। यदि मेरे मित्र न होते तो

सम्भवतः मैं इस दुष्ट से अवश्य कपड़े छीन लेता लेकिन मैंने और उपाय सोचा ।

मैंने दृढ़ता पूर्वक फकीर साहब से कहा, कि मैं तुम्हें इस हरामखोरी का दण्ड दिए बिना हर्गिज-हर्गिज न जाने दूँगा। पचास बार कान पकड़कर उठो-बैठो और खबरदार जो कभी इस ओर आना।

फकीर ने क्रोध की चिनगारियाँ मेरी आँखों में देखी। सम्भव है कि यही सोचा है कि स्वेटर और कमीज़ दोनों बिलकुल दुस्त हैं। सौदा फिर भी बुरा नहीं। बहुत ही शान्ति और सरलता से आपने डण्डा और अपना प्याला एक ओर रक्खा। भोली और माला उतार कर रक्खा और तहमद ऊँची करके कसने लगे कि मैंने डाँटा—“बदतमीज़”। इसके उत्तर में वे मुझे बहुत ही नाश्चिन्त करते हुए कहते हैं—“नीचे जाँघियाँ पहने हूँ” और निवेदन किया, कि उठने-बैठने में तहमद बाधक होगी।

लेकिन चूँकि मैं दण्ड देना चाहता था, अतः मैंने उमर्गी भी आज्ञा दे दी। अब ये हजरत एक खौफनाक तर्ज के साथ बड़े ज़ोर से साँस लेकर बिना कान पकड़े हुए पहलवानों की तरह एक-एक मराटे में पैर सरकाकर बैठक लगा गये।

“बदतमीज़, बेहूदा” मैंने जलकर कहा—“याद रखो तुम्हें पुलिस में दे दूँगा। कान पकड़कर सीधी तरह उठो-बैठो।”

दो बार उसको मैंने कान पकड़वाकर उठना-बैठना बताया। और ये हजरत दण्ड भुगतने में लीन हो गये। ये हजरत मेरा मित्र का आर थे और हम दोनों मित्र फकीरों को बुरा-भला कहने से बचते थे।

[५]

यकायक मुझे याद आया कि “कान पकड़ा” खोजने के लिए मैंने
हो चुकी, मुड़कर मैंने देखा, तो तेजी के साथ आगे बढ़ने

कहा—“बस, बस अब जावो । मैंने तो पचास बार के लिए कहा था, अधिक क्यों की?”

वह बोला,—“साहब पचासों बैठकें प्रतिदिन लगाता हूँ । मैंने सोचा, कि अब बार-बार कौन करता फिरे, लावो यहीं पूरी कर लूँ ।”

“अरे !”—मैंने उस अभागे को ऊपर से नीचे तक ध्यान से देखते हुए कहा—“क्या तू पहलवानी करता है ?” खुदा की कसम, मैंने मानों अब उसे ध्यान से देखा । कान टूटे हुए, छाती, कन्धा, और पुट्टे ! अच्छा कसरती बदन !

उत्तर देते हैं, “वैसे नहीं कहता । शहर के जिस पट्टे से जी चाहे लड़ा लीजिए ।”

मैंने कहा—“कम्बख्त ! जी में तो यही आता है, कि तेरा और अपना सिर मिलाकर लड़ा लूँ । निकल यहाँ से अभी, अभी निकल... निकालो इसे !

जल्दी-जल्दी उसने अपनी भोली इत्यादि उठाई और सैकड़ों दुआयें देता हुआ चला गया और कम्बख्त मुझे हद से अधिक पराजित और परिश्रान्त हाल में छोड़ गया ।

इस दुष्ट का बुखार मैंने दूसरे फकीरों पर निकाला । किसी को न दिया । डाँटकर भगा दिया । कुछ दिनों के बाद क्या देखता हूँ, कि खड़े होकर नौकरानी से बहस कर रहे हैं । वह कहती है, कि जावो आगे बढ़ो । आप कहते हैं, कि “हमें इस घर से हमेशा मिलता है ।” (शब्द हमेशा पर जोर) । इधर जो मैं आया, तो भट मुझे इसकी गवाही में आप पेश करते हैं—“अल्लाह भला करे कुछ सार्ई को भी ।”

मैंने उसे पकड़ लिया कि आज तुझे नहीं छोड़ूँगा । सच कहता हूँ, कि उस दुष्ट से कोई मन भर लकड़ियाँ फड़वाईं । सब फाड़-फूड़ बराबर कर दी, और मेरी कुर्सी के पास आकर मेरा पैर दबाने लगा और “अल्लाह भला करे ।”

“अरे कम्बख्त छोड़ !”—मैंने कायल होकर कहा— क्योंकि मुझे ऐसा ज्ञात हुआ, कि मेरी हड्डियाँ कोई लोहे के सीकचे में रखकर दान रहा है ।

लकड़ियों की फड़वाई कदाचित् दो आने दिये । कमीज एक और माँगने लगा वह न दी, ताँ बदमाश कहता है, कि “भूखा हूँ ।”

मेरा विचार हो रहा है, कि इस बेचारे को मिस्टर त्रिलास के पास सीधे टोकियो (जापान) भेज दूँ ।



क्रिकेट मैच

[१]

क्रिकेट और क्रिकेट मैच पर आजकल बरसात के मौसम में कुछ लिखना 'बे फसली' सी चीज है, खास कर उस समय, जब कि ज्यादा दिन नहीं बीते, कि क्रिकेट के व्यर्थ मैचों का हाल और उनकी खबरें छापते-छापते अखबार वालों ने जनता के मन में ऊब पैदा कर दी। और फिर अब तो यम० सी-सी वाले भी हिन्दुस्तान से 'आउट' हो गये। नहीं तो बहुत मुमकिन है, कि अगर यह लेख कुछ पहले प्रकाशित हुआ होता तो हमारे हिन्दुस्तानी खिलाड़ी क्रिकेट का एक ऐसा गुर जान जाते कि एक ही बार के खेल में यम० सी-सी की बुद्धि ठिकाने पर आ जाती।

बहुत सम्भव है, कि आप यह सोचें कि यह एक बेचारा लेखक क्या जाने क्रिकेट और क्रिकेट की बातें, लेकिन निबंदन है कि प्रायः लड़ाई के मैदान में लट्टू काम आते हैं; और तलवारें रक्खी रह जाती हैं। और फिर मैं क्रिकेट में ऐसा अनजान और अनाड़ी भी तो नहीं। मुझे स्वीकार है, कि स्कूल की टीम के कप्तान से सदा अनबन रही, जिसके कारण टीम में मुझे कभी नहीं सम्मिलित किया गया। लेकिन वैसे दर्जनों मैचों में मैंने भगड़ा किया। 'आउट' और 'नाट आउट' के भगड़ों में सदा आगे रहा, और आगे रहा। कालेज में पहुँचकर नजीर अली और वजीर अली का क्लासफेलो रहा। सैकड़ों मैच देख डाले, रन गिन डाले, एम्पायरों की भूलें निकालीं, विलायती बल्लों में त्रुटियाँ निकालीं। बल्कि एक को तो चुरा लिया। अलीगढ़ में जब

यम० सी-सी वाले आए तो डालीगन को मिस्टर ओरनोट के सामने एक मैच का चैलेंज दिया, और यदि वे स्वीकार कर लेते तो अपनी हार को जीवन भर न भूलते। सारांश यह कि क्रिकेट के मैदान में रहा, बड़ा और पला और केवल अपनी स्फूर्ति से क्रिकेट में वह तरकीब ढूँढ़ निकाली कि जिससे मैच हारने की सम्भावना ही जाती रही। एक नहीं, इसी तरकीब से दस मैच खेले हैं, और जीते हैं—स्वयं हमने।

[२]

एक बार की बात है, कि जब हम स्कूल में पढ़ते थे, तो हमारे कप्तान साहब दौड़-धूम करके मिल-मिलाकर किसी न किसी प्रकार एक मैच गोरों से तै कर आए। ये गोरों तो वैसे ही मैच के भूखे होते हैं। इस मैच में कप्तान साहब ने न तो हमें खिलाड़ियों में सम्मिलित किया, और न “अतिरिक्त मद” में रक्खा, जो हर जगह घुस घुसकर मैच देखते, रन गिनते, बल्ले तोलते, या और प्रकार से विशेषता प्रगट करते। रिफ्रेशमेन्ट के प्रबन्ध में भी आगे ही नहीं, सबसे आगे रहते। गोरों की फौज की तरफ से मैच के लिए अच्छा प्रबन्ध था। तुरा यह कि एक खीमे में रिफ्रेशमेन्ट के बहाने से न जाने क्या-क्या यार, लोगों ने “रेशम” और “कलावत्तू” उड़ाया, और हम विवश खड़े देखते रहे। अर्थात् हम और हमारे मित्र सचमुच दूर से ही साधारण मैच देखनेवालों की तरह मैच को “देखते ही” रह गये। परिणाम, हमारे स्कूल की हार रही, बुरी तरह हारे। दौड़ते-दौड़ते, और “पदते-पदते” सबेरा हो गया। खिलाड़ियों को गोरों ने बिलकुल निचोड़ डाला। एक से एक तगाड़ा गोरों वहाँ मौजूद, इस तरह, कि उधर गेंद पहुँची नहीं कि उसने “बन्नी” कर दी। सारांश यह, कि लड़कों को रपट मारा। जितना खिलाया था, सब वसूल कर लिया। फिर कृपा ही समझिए, जो गोरों ने छोड़ दिया। क्योंकि उनके रन इतने हो गए

ये, कि आगे खेल को आवश्यकता ही न रही। कई विकेट और बहुत से रनों से स्कूल की टीम हारी।

मैच का प्रबन्ध, रिफ्रेशमेन्ट इत्यादि का प्रबन्ध ऐसा था, कि उसकी आकर्षक और सुन्दर स्मृति किसी नेक और पवित्र हृदयवाले विचारार्थी के भोले-भाले मन से न निकल सके, अतः हमें भी चिन्ता हुई कि किसी प्रकार इन गोरों से मैच तै करें।

अतः हम इस ताक में थे, कि एक दिन इसी रेजीमेन्ट का गोरा हमारे बँगले की ओर निकल आया, यह रेजीमेन्ट हालैंड का था। इस गोरे के साथ एक कुत्ता था, और हमारे यहाँ बिना अतिशयोक्ति के अच्छे से अच्छे कुत्ते मौजूद थे। और कुत्तों के डाक्टर और उनका आदर करने वाले नहीं, बल्कि सच्चे प्रेमी भाई साहब भी मौजूद। कुछ तो कुत्ता पसन्द और कुछ गोरा पसन्द, अतः झट गोरे साहब को रोकने का बहाना प्राप्त हुआ। परिणाम यह कि बहुत जल्द श्रीमान् गोरे साहब बँगले की छोटी सी लान पर बैठे कुत्तों की देखभाल कर रहे थे, यहाँ अपना यह हाल कि बातें तो कुत्तों की हो रही हैं। लेकिन मन लगा है मैच के रिफ्रेशमेन्ट में, गोरे साहब को क्रिकेट की बातचीत पर लाना चाहा तो शत हुआ, कि वे क्रिकेट से बिलकुल प्रेम नहीं रखते। सोडा बर्फ से उनका आदर स्वागत किया। उनके यहाँ कुत्ते देखने आने का वचन दिया और साथ ही उसी सिलसिले में यह भी निवेदन कर दिया, कि मैच का मामिला भी वहीं तै कर लेंगे।

दो चार दिन के बाद रेजीमेन्ट में जो पहुँचे तो या तो उस बेहूदे गोरे का हम नाम भूल गये या दस बीस गोरे इसी नाम के और मौजूद थे। पता लगाकर जब पहुँचे, तो सचमुच इसी नाम का एक बड़ा धृष्ट गोरा मिला। जो हमें देखते ही आँखें निकालने लगा। और उँगलियाँ नचाने लगा और उसके साथी लगे ठट्ठा मारकर

हूँसने । फिर आगे साहस न हुआ, जो उस मनहूस की खोज के सबन्ध में किसी और बुरे गोरे से मिलते, अतः सोचा, कि मैच तै कर लें ।

नियमानुसार टाइप किया हुआ चैलेज एक कल्पित क्लब के कप्तान की ओर से लाए थे । किसी रेजीमेन्ट में मैच तै करना साधारण बात नहीं । घण्टा इधर से उधर दौड़े । दर्जनों अफसरों और न जाने किन-किन से मिले और परिणाम यह कि जवाब ठीक न मिला । पत्र पर पता छोड़कर आए, कि इस पते पर हमें सूचित किया जाय ।

बात बिलकुल बीती ही गई थी, कि दस-पन्द्रह दिन बाद एक सूचना पत्र आया, कि हम अमुक दिन मैच के लिए तैयार हैं । हम फिर शीघ्र रेजीमेन्ट पहुँचे और मैच को स्वीकार कर लिया, एक शर्त पर वह यह कि खेल का सामान हमारी दूसरी टीम उसी दिन एक दूसरे स्थान में ले जायगी अतः सामान इत्यादि आपका ही रहेगा । वास्तव में यहाँ यह हाल था, कि टूटे बल्ले को छोड़कर और कुछ न था । गोरों के यहाँ नियम है, कि प्रतिदिन तो वहाँ कवायद, परेड और इसी प्रकार के व्यर्थ धन्धे रहते हैं, मैच के लिए विशेष रूप से दिन निकाला जाता है । सारी रेजीमेन्ट की छुट्टी हो जाती है । अतः हमसे नियमानुसार समय पर पहुँचने का भी संकेत कर दिया गया था । यह मामला तै करके जब हम आए हैं, तो यार दोस्त प्रसन्नता के मारे पागल हो गए । नाचने लगे, और यह हाल कि सबके सब मित्र मैच खेलने के लिए तैयार । ऐसे-ऐसे अनाड़ी कि गेंद फेंकने से पहले ही आउट हो जायँ । बड़ी कठिनाई से हमने चुनाव किया और गहरी मित्रता को विवश होकर कसौटी बनाना पड़ा । एक साहब काँ केवल इसलिए रखना पड़ा, कि उन्होंने अपने दो सूट दूसरे खिलाड़ियों को देने का वचन दिया, वास्तव में यह बहुत आवश्यक था, कि हम ठाट से जायँ । एक किराये की मोटर की और और ठीक समय से इतने पहले हम वहाँ पहुँचे हैं, कि मजदूरों और

खलासियों के अतिरिक्त वहाँ कोई न था। मोटर पर आना व्यर्थ गया। इस बीच में सब आपस में पृथ्वीराज की सेना की तरह प्रतिज्ञा करते रहे, कि बहुत अच्छा खेलेंगे। जब तक जान में जान है, और बल्ला हाथ में है, गेंद को विकेट के पास भी न जाने देंगे। चाहे कितने ही जोर से गेंद आती रहेगी, कभी-भभी “क्रैज़” न छोड़ेंगे। वास्तव में दो-तीन ऐसे ही थे, उनसे शपथें लीं।

[३]

बहुत शीघ्र भगवान ने दया की और मैदान भर गया। सैकड़ों गोरे दूसरे शब्दों में गोरे पर गोरे और मेमें और इधर-उधर के लोग एकत्र हुए। पहले की सी भीड़ हो गई और प्रबन्ध ऐसा ज़ोरदार, कि रिफ्रेशमेन्ट के खीमे की ओर देखकर हम लोग आपस में जब आँख का संकेत करके मुसकुराते तो भीतर से हृदय खिंचने लगता। खाना भी कौन मनहूस खा कर आया। किसी ने कहा, कि भैया मैं तो दस बिसकुट खाकर आया हूँ। कोई रोटी का एक टुकड़ा खाकर और ऊपर से बहुत सा पानी पीकर आया था। मैंने स्वयं केवल एक अन्डे पर सन्तोष किया था। यह सोचकर कि वह डटकर खाया जाय, कि गोरे भी याद करें, कि आई थी कोई टीम क्रिकेट खेलने। मैच था गोरों से कि कोई मज़ाक।

हम आप से सच निवेदन करते हैं, कि सहम ही तो गये, जब गोरो के कप्तान ने कहा कि—“टास”। मानों यह निश्चय हो कि कौन पहले खेले। हमने कहा, कि जैसा हम पहले निवेदन कर चुके हैं, साधारणतः हम दो मैच खेलते हैं इस मैचमें हम पहले खेल लें और दूसरे मैच में आप पहले खेल लीजिएगा। एक गोरे ने चूँ चरा की तो हमने कहा कि “साहब, हम लोग हिन्दुस्तानी और शक्की आदमी हैं। शकुन और आशीर्वादों से काम चलाते हैं। यदि इसके विरुद्ध हुआ तो अपने विश्वास के अनुसार न केवल हम हार जायेंगे, बल्कि और किसी

आपदा से मुठभेड़ होगी ।” शकुन और आशीर्वादों के पवित्र सिद्धान्त जब इन मूर्ख गोरों को समझाए तो वे बहुत हँसे और मान गये ।

जल्दी-जल्दी और चुपके-चुपके मैंने खिलाड़ियों को शपथ दे-दे कर सतर्क किया, कि देखो गड़बड़ न होने पावे, टूर्नामेंट डटकर खेलना, इत्यादि, इत्यादि ।

हमारे दो घटिया वर्ग के खिलाड़ी बल्ला लेकर मैदान में तालियों की गूँज में उतरे । ये दोनों देखने में बड़े अच्छे खिलाड़ी मालूम होते थे । लेकिन वास्तविकता यह थी, कि गुल्ली डण्डे से आगे कुछ न जानते थे । तैयार होकर खड़े हुए । उधर से गेंद जो आई तो उन्होंने वचन दिया था, कि बिलकुल न दौड़ूंगा, अतः वचन का पालन किया । उन्होंने वह कस कर हिट लगाया, कि यदि गेंद पर बल्ला पड़ जाता तो पुतली बन जाती । लेकिन वह तो कम्बख्त विकेट उड़ा ले गई । उन्हें पहले ही से सिखा दिया गया था, और ‘आउट’ होने के अतिरिक्त ये अपने स्थान से न हटें । पूछा तो कहने लगे, यह तो “ट्राई बाल” थी । गोरे शीघ्र मान गये । लेकिन ये हजरत तीसरी गेंद पर आउट हो गए । दो खाली निकल गईं ।

चौथा व्यक्ति जो हमारा पहुँचा है, तो इसने गोरों को परीशान कर दिया । अच्छा खिलाड़ी था । साथी भी अच्छा मिला । चारों ओर हिट लगाये, और किसी प्रकार गोरों की पकड़ में न आया । उस समय तक, जब तक, कि उसने चौतीस रन न कर लिए । कुल मिलाकर हमारे रन लगभग पचास के पहुँचे थे, कि यह खाकी पुतला उठा । यार लोगों को सिखा दिया था । टीम का कप्तान था, दिल्लीगी थी ? बड़ी बहादुरी ले गये, और मैं इस टाट से “क्रेज़” पर पहुँचा हूँ, कि बस देखते ही रहिए ! पहुँचते ही पहले तो मैंने चारों ओर ऐसी दृष्टि दौड़ाई, कि मानो यह देख रहा हूँ, कि किस गोरे को अधिक दौड़ाना चाहिए । देख भाल के पश्चात् मैंने क्रेज़ नापी । इसके

पश्चात् उनके एम्पायर से बड़ी शान के साथ सेन्टर माँगा। अपने एम्पायर को भी आँख मार दी। आदमी सिखाया पढ़ाया और बहुत पहले से ही सर्वज्ञ था। वह भी पहुँचा और प्रबन्ध में सम्मिलित होकर उसने वैज्ञानिक ढङ्ग पर भूलें बताकर नये सेन्टर की सञ्चाई को प्रमाणित किया और वह भी इतनी जाँच-पड़ताल के पश्चात्, कि कदाचित् लोग परीशान हो उठे होंगे। इसके पश्चात्, रूमाल, जिसे मैं जान-बूझकर अपने स्थान में छोड़ आया था, माँगा। भट एक सधाया हुआ साथी रूमाल लिए दौड़ा आया। अब जो देखता हूँ तो सामने गोरों का भयानक “बूलर”। एक घुटा हुआ, हृद से अधिक लाल, और बड़ा तगड़ा, स्वयं गेंद की तरह गोल-मटोल गोरा था। जो इतने ज़ोर से भन्नाकर गेंद फेंकता था, कि जान पड़ता कि मेक्स-मेगन का गोला है कि चला आ रहा है। मैंने इस दुष्ट को देखा, कि चला वह उधर से गेंद लेकर और इधर पूर्व इसके, कि उसके हाथ से गेंद छूटे, मैं “नाट रेडी” कहकर क्रेज़ को छोड़कर अलग हट गया। गेंद बीच का विकेट उड़ाये चली गई। मैंने बहाना किया। कुछ नहीं, ऐसा भी होता है। इससे गेंद की चाल भी ज्ञात कर ली। अब मैं यह सोच रहा था, कि यदि कहीं लग गई यह गेंद मेरे सिर पर तब क्या होगा? मन में कहा, कि “भैया मिरजा खेल गया चूल्हे में।” यह बल्ला जो ईश्वर ने तुम्हें इस समय कृपापूर्वक दिया है, इसे अपने लिए अञ्छा समझो! यह लकड़ी की निर्जीव विकेटों की व्यर्थ रक्षा के लिए नहीं है, बल्कि वास्तव में आक्रमण से अपना सिर बचाने के लिए है। अब रह गये वेकट! तो उनके बचाने की चिन्ता में जो तुम भूलकर भी पड़े तो याद रखो, कुशल नहीं। ऐसा न हो, कि सिर को भूल जावो। यह गेंद नहीं गोला है, जिसे एक जालिम फेंक रहा है। सब कप्तानी धरी रह जायगी! जो फूट गया सिर तो रिफ्लेक्शमेंट के खीमे की जगह यही धृष्ट गोरे तुम्हें खाली पेट मिलिटरी हास्पिटल न

पहुँचा दें तो हमारा नाम, और फिर केक पिस्टरी के स्थान पर केवल खारी सोडा ही हाथ आयेगा ।

अतः इन बातों को दृष्टि में रखते हुए मैंने अनिच्छित मन से गेंद फेंकने की आज्ञा दी । हृदय धड़कने लगा । मुँह बनाकर और शरीर को झटका देकर वह कम्बख्त लपका है, कि गेंद उसके हाथ से छूटती दिखाई पड़ी । मैंने किचकिचाकर बल्ला कसकर पकड़ लिया था और उठाकर हिट लगाने की सम्भावना पर विचार करने ही को था, कि खटका हुआ । मैं चौक पड़ा ! आउट हो गया । लेकिन नहीं, गेंद बल्ले पर पड़ी थी । अपने स्थान से हटा ही न था । लोगों ने प्रशंसा-सूचक नारे लगाए, 'वेलप्लेड' 'वेलडन' । इन सुन्दर शब्दों के साथ ही 'ओवर' समाप्त हो गया । अब दूसरे खिलाड़ियों की बारी थी । उनका वैसे ही दम सूख रहा था । इधर मैंने उनसे कहा, 'एस्टेडी' उधर तड़ से उनका विकेट ला पता ।

नया खिलाड़ी आया । इसने भुगतान भुगता ही था, कि फिर मेरा नम्बर आया । मैंने मन में कहा, कि यदि यह 'ओवर' खेल लिए कुशलता से तो फिर बिलकुल क्रिकेट ही खेलना कम कर देंगे । उधर बूलर भूमता चला, और इधर मैंने मन में सोचा, कि गेंद या तो मेरी ओर आएगी और या विकेटों की ओर । यदि मेरी ओर आई तो विकेट मजबूत, और मेरे हाथ में जान बचाने की वह शक्ति भी तो मजबूत है, जो 'बल्ला' के नाम से प्रसिद्ध है । कहने का तात्पर्य यह, कि यदि हिट न लगा तो क्या है, गेंद भी तो न लगेगी । बस यह देखना है, कि गेंद स्वयं अपनी ओर तो नहीं आ रही है । और यही वास्तव में क्रिकेट का गुर है । अतः यह सोचकर मैं तैयार हो गया । उधर से गेंद जो आई दनदनाती हुई तो सच निवेदन करता हूँ कि जिस समय बूलर के हाथ से छूटी है, मेरा हठ विचार था, कि मैं बाउण्ड्री लगाऊँगा, क्योंकि वह विकेट की ओर आ रही थी, लेकिन

जब तक गेंद आधी यात्रा खतम करे मैं “चोट फेन्ट” की संभावना पर विचार कर चुका था। विकेटों की ओर.....मेरी ओर..... विकेट सुरक्षित ! लेकिन नहीं, वह तो दोनों ओर आती हुई मालूम हुई। विकेट गए चूल्हे में, इसके अतिरिक्त कोई उपाय न था कि त्राहिमाम् करके आँख बन्द कर बल्ले की ढाल बनाते हुए स्थान से “नो बाल” कहकर उछल कर दूर गिरूँ। इस कार्रवाई में बल्ले का स्थान मेरे पैर ने लिया और इस पर जोर से गेंद लगी और उधर मैं “नो बाल” कह कर कूद चुका था। सिखाया पढ़ाया एम्पायर अपना था। दोनों ओर से अपील हुई। हमारी ओर वाले बोले, “नाट आउट” एम्पायर भी बाल उठा, “नाट आउट” गोरें भन्नाकर रह गए। नियम अच्छा है कि जो एम्पायर कहे वह सच है और हमने तो अपने एम्पायर से कह दिया था—यदि वहाँ तुम्हारी किसी ने किरकिरी की तो नियमानुसार भगड़ा करके मैच बन्द कर देंगे। अब दूसरी गेंद जो आई तो मेरा साहस कलावाजी खा रहा था। आँख बन्द करके ‘या अली’ कहकर जो हिट बढ़कर दिया तो बल्ला खाली, और गेंद कन्धे को चाटती हुई टोपी उड़ा ले गई। मैं फिर चिल्लाया, “नो बाल।” लेकिन कुछ लाभ न हुआ। अब प्राण पर खेल जाने के अतिरिक्त कोई उपाय न था। इसके पश्चात् फिर जो गेंद आई तो क्या निवेदन करूँ। नाप तोलकर हिट भी लगाया, निशाना भी सच्चा बैठा, लेकिन विकेट लापता। बस यह जान पड़ा, कि टेनिस का ताँत-हीन बल्ला था, जो गेंद इसमें से निकल गई। पूरे बीस मिनट क्रिकेट खेलकर बिना हिट लगाए पास किए हुए चले आ रहे हैं।

मेरे पश्चात् जो बाकी बचे, वो बहुत बुरा खेले। डर के मारे क्रेज पर उछल-उछल पड़े। इधर-उधर जाती हुई गेदों को मरदाने ढङ्ग से रान और पीठ पर लिया और जो सीधी आई, वह विकेट लिए चली गई। कुल हमारे साट सत्तर रन के लगभग हुए और सब

आउट। हम भी इस मूर्खता से छुट्टी पाकर सोचे, कि चलो खूब हुआ। अब असली खेल तो आरम्भ होगा। “रिफ्रेशमेन्ट वाला।” देखें यहाँ कौन-कौन हिट और ‘बाउन्ड्री’ लगाता है।

[३]

नाश्ता की मेज़ों पर जोर की मोर्चेबन्दी रही। गोरे खुद बेतक-ल्लुफी को न पसन्द करने वाले, और हम सब भी ऐसे ही, और बहुत देर के भूखे। अल्लम-गल्लम जो सामने आया, पार किया। कई चीजें तो इस गड़बड़ और दौड़-धूप की हालत में ऐसी खाई कि नमक डालना भूल गए। और कइयों के स्वाद का पता न रहा। मन को समझा लिया कि भाई अँग्रेज़ी खाने फीके मीठे तो होते ही हैं। मैं स्वयं पूरा एक केक खा गया। गोरों में प्रत्येक ने मुश्किल से इतना खाया होगा, कि उसका चौगुना हमारे यहाँ उस व्यक्ति ने खाया, जिसने सबसे कम खाया। इस पर चाय, और कस कस कर पानी। पान के स्थान पर नारंगियाँ। तात्पर्य कि ऐसा डट कर खाया, कि अब पानी जो पीते हैं, तो जी ने यही चाहा, कि अब “बाकी फिर।” लेकिन नहीं, हमें तो मैच खेलना और “जीतना” था।

निवेदन है कि यह खाकसार विकेट कीपरी में सम्मान के योग्य है। अतः जब गोरों के खेलने का बारी आई तो इन कर्त्तव्यों का महत्व-पूर्ण भार अपने ही कन्धों पर रक्खा। अपने खिलाड़ियों का नियम से खड़ा किया। किसी को बेमतलब कुछ इधर हटाया, किसी को उधर हटाया, और किसी की जगह बदली। इसके पश्चात् बन्दा बहुत ही सावधानी से बड़ी शान के साथ अपने महत्व-पूर्ण कर्त्तव्यों को पूर्ण करने में संलग्न हो गया।

हमारी ओर से पहली ही गेंद आई है, कि हड़ामा मच गया। गोरे ने कस कर हिट लगाया। हिट अच्छा पड़ा। और बहुत अच्छा “स्लिप” निकला। इस प्रकार, कि गेंद उठ गई और सीधी हमारे

एक चतुर खिलाड़ी के छाती की ओर एक अच्छा “कैच” की सम्भावना लिए हुए आई, लेकिन खिलाड़ी एक चालाक ठहरा। साफ बच गया। सिर पर हाथ रख कर बैठ गया। और गेंद ऊपर से निकल गई और दूसरी ओर गिरी। झपट कर हमारे एक बहादुर ने ली। गोरा रन कर रहा था, अतः उन्होंने बड़े जोर से विकेट कीपर अर्थात् मेरी ओर फेंकी, जिससे कि मैं विकेट में मारूँ। अब मेरे पास जो गेंद आई तो प्रथम तो बहुत ही पास से फेंकी गई थी और फिर इतने जोर से फेंकी गई थी, कि वाहिमाम् ! अतः विचारतः और अविचारतः गेंद मुझसे निकल गई। और मैं अपनी ड्यूटी छोड़ छाड़कर एक नारा लगाकर गेंद के पीछे ! लेकिन मुझसे पहले एक दूसरे हमारे खिलाड़ी ने उठा ली और जोर से जो विकेटों की ओर फेंकी, या मारी है, तो वह गोली की तरह विकेटों से कुछ दूर पर होती हुई निकल कर चली गई, वहाँ रोकता कौन ? मैं तो यहाँ था। अब मैं फिर लौटा, और विकेटों पर न रुक कर गेंद की ओर दौड़ा। वहाँ गेंद दूर निकल गई थी। एक साहब ने उठाकर मुझे दी। मैंने देखा कि मेरे स्थान पर एक दूसरे मेरे खिलाड़ी आ गए हैं और गेंद की प्रतीक्षा में हैं, कि पहुँचे तो विकेटों को गिरा दें। अतः मैंने अपनी पूरी शक्ति से गेंद उनकी ओर फेंकी, उन्होंने वैसे तो बड़ी तैयारी की थी कि लेकिन जब गेंद पास आई तो आदमी ये भी समझदार थे, अपने पैर बचाने के लिए उछल गए, और फिर गेंद भागती चली गई। इस बीच में गोरे हैं, कि कर रहे हैं दनादन रन पर रन। मैं फिर गेंद की ओर झपटा तो क्या देखता हूँ, कि हमारे दो खिलाड़ियों के बीच से गेंद निकल गई है। एक ने अपने ही स्थान से तड़प कर कहा, “अमा लेना... दूसरे ने कहा, क्या खूब ! अपनी बला मेरे सिर, स्वयं क्यों नहीं दौड़ते।” जब मैंने यह देखा तो मैं स्वयं दौड़ा। कहावत है, कि सबका आका सबसे कमतर। हम ही तो टीम के कप्तान थे।

प्रतिष्ठा हमारे ही हाथ थी । दौड़कर गेंद को पकड़ा, नहीं तो बाउण्ड्री हो जाती । लेकिन अब जो घूम कर देखते हैं तो गोरे ने रन करना बन्द कर दिए हैं । कोई बीस-बाइस रन तो हो चुके थे । और यदि बे किये जाते तो दस-बारह और हो जाते । जब मैंने देखा तो गेंद हाथ में ही लिए लपकता आया । दोनों खिलाड़ी अपना-अपना स्थान छोड़कर मेरी ओर आ गए थे । त्वोरी पर उनके बल थे । एक गोरे ने बढ़कर मुझसे कहा, “आप केप्टन !” उत्तर न देकर मैंने गेंद को विकेट पर घुमाते हुए एम्पायर से पूछा, “हाऊ इज़ इट एम्पायर ।” हमारा एम्पायर यह बोला, “आउट” इस पर दर्शकों में एक शोर-सा हुआ । हम स्वयं कायदा-कानून से परिचित । यदि थोड़ी देर के लिए मान भी लिया जाय कि हम सोच-समझकर प्रतिद्वन्दी को ‘रन’ करने का अवसर दे रहे थे तो इसका यह तात्पर्य तो नहीं, कि रन करनेवाले रन करते-करते न केवल रुक जायँ, बल्कि इधर-उधर अफयूनियों की तरह घूमने लगें । स्वयं उनके एम्पायर से हमने कहलवा लिया, कि खिलाड़ी ‘आउट’ हो गया । विवाद और हुज्जत तक की नौबत पहुँच गई । हमने भी कहा, कि साहब हम अच्छी फील्डिंग कर रहे हैं । आप रन किये जाइए । आपको हमारी फील्डिंग से क्या विवाद ? चाहे हम अधिक रन बनवा दें या थोड़े, आप कौन ? आपको रन करने से तात्पर्य । अतः अब जो गोरे साहबान खेलने के लिए खड़े हुए हैं, तो हमारी फील्डिंग का रङ्ग ही ओर था । वह खिलाड़ी जो हिट पर था, जेब में ताश लाया था, और किनारे बैठा “बाउण्ड्री... में” के साथ चानस खेल रहा था । जो खिलाड़ी “आफ़” पर था, वह हाथ नचा-नचाकर गुन-गुना रहा था । “मोटर का पहिया तेज़ सैयाँ हम नहीं बैठेंगे । मोटर का ..” लांग विकेट कीपर बैठा हुआ था । पूछा, क्यों ? तो बोला, हम इधर से गेंद कदापि न जाने देंगे; तुम्हारी बला से बैठें या लेटें । शेष जो उनसे अधिक

मुस्तैद थे, वे अलग-अलग न खड़े होकर बाते करने के लिए दो-दो इकट्ठे खड़े थे। या लेटे थे। कुछ मूँग फलियाँ ढूँँग रहे थे। खा इतना लिया था कि चलना कठिन था। फील्ड की यह दशा और इधर हमारा बूलर बार-बार खिलाड़ियों को पुकार कर कह रहा था कि “रेडी प्लीज़” और इधर मैं भी अपने “मडगार्ड” टाँगो पर चढ़ाये “यस... . यस... .” कर रहा था। और उधर गोरे साहबान खेल के स्थान पर हुज्जत और विवाद के लिए काटवद्ध ! आग बबूला होकर मुझसे गोरे ने कहा, “तुम्हारा इससे क्या तात्पर्य है ?” और हमारे दो मुस्तैद खिलाड़ियों की आंर उँगुली उठाई, जो इस समय बड़ी संलग्नता से पञ्जा लड़ा रहे थे। मैंने उत्तर दिया कि हमारे खिलाड़ी वास्तव में अपना उत्तरदायित्व अच्छी तरह समझते हैं। आपको कष्ट करने की कोई आवश्यकता नहीं। हमारी टीम एक स्थान से नहीं, सैकड़ों स्थान से जीत कर आई है। सारांश मैंने और हमारे बूलर ने तकाज़ा करके गोरे को तैयार किया। हमारे बूलर ने विचारतः गेंदें बचाकर देनी आरम्भ की। इस प्रकार, कि गोरे के पीछे से निकलती हुई चली जाय। इस बात से कुछ बहस नहीं, कि नो बाल है, या कैसी। चौथी गेंद गोरे ने बढ़कर कसकर ठोंक दी, और इसी पर हम मैच जीत गये।

गंद में हिट जो लगा, और मैंने जो कहा है, कि “लेना” तो हमारे खिलाड़ियों की मुस्तैदी को देखिये कि जो जहाँ था, वह वहीं से दौड़ पड़ा गंद की ओर ! और वह भी इस प्रकार ज़ोर से, कि बस देखते ही रहिये ! लेकिन गंद चूँकि आगे जा चुकी थी, और दौड़ने वालों ने कुछ दूसरी दिशा की ओर रुख किया। अतः बहुत शीघ्र वहाँ से लोगों ने पुकारा, “हमें नहीं मिलती।” और फिर शीघ्र प्राणों को प्रफुल्लित करनेवाली यह आवाज़ आई, कि “खो गई।” यह सुनकर हमारे बूलर ने नारा लगाया, कि “खो गई... .” दूसरी गिल्ली मेरा

दाँव । अब गोरों की मूर्खता देखिये, कि रन नहीं करते । मैंने हाथ भटककर बढ़ावा दिया, “गो आन सर... रन आन ।” दर्शकों ने कहकहे लगाये, और सैकड़ों आदमी चिल्लाये, “रन आन” “रन आन” लेकिन नाम न लीजिए गड़बड़ हो गई । सब लोग खेल देखने के ऊँचे स्थान पर से उतर पड़े । उनमें से कुछ क्रुद्ध थे । लेकिन शेष हँस रहे थे । लेकिन स्वयं गोरे खिलाड़ी आग बबूला हो रहे थे, दो तीन खिलाड़ियों को छोड़कर जो मेरी पीठ ठोक कर कहने लगे “वेल प्लेड कैप्टन ।” और मैं भगड़ रहा था, कि आप लोग क्यों खेल बन्द किये देते हैं । हमारे सभी खिलाड़ी आकर एकत्र हुये । विवाद प्रारम्भ हो गया । जिन गोरों ने रन किये थे, उनकी मेमें और लड़कियाँ इतना मज़ाक उड़ा रही थीं, कि स्वयं अपनी मूर्खता पर उन्हें हँसी आने लगी । हमने बहुत कहा, कि खेलो, लेकिन गोरे न माने । जब किसी प्रकार तैयार न हुए तो हमने अपने एम्पायर से ‘रूल’ माँगा । परिणाम यह कि हम लगभग पचास-साठ रन से जीते और प्रतिद्वन्द्वियों के न खेलने के कारण मैच समाप्त हो गया ।

इस सफल मैच के पश्चात् हमने कानपुर में दो तीन इसी प्रकार के मैच खेल डाले । यहाँ तक कि एक मैच में मारपीट तक की नौबत आ गई । फिर तो यह नियम हो गया, कि जो भी टास जीता, वह मैच भी जीत गया । फिर जब अलीगढ़ में “यम० सी-सी” का मैच हुआ तो न केवल एक टीम तैयार कर ली थी, बल्कि हमारी टीम के बहुत बड़े संरक्षक और दूसरे प्रेमी मित्र एक हजार रुपया तक भी “यम० सी-सी” को देने की तैयार थे, और मैं इस सम्बन्ध में बहुत कुछ दौड़ा धूपा, लेकिन गिलगैन ने समयभाव के कारण से अस्वीकार कर दिया, नहीं तो हम सच निवेदन करते हैं, कि उस मैदान में उनको हराते, जहाँ उन्होंने हमारी युनिवर्सिटी को पराजित किया था ।



वकालत

वकालत भी क्या ही अच्छा.....आज़ाद पेशा है, यह क्यों ?
सुनिये, मैं अभी बताता हूँ—

[९]

एक दिन की बात है कि एक बड़ा अच्छा भोज था। कुछ परिचित और मित्र बाहर से भी इसी उत्सव में आये थे। जिनसे कालेज का सम्बन्ध था, उनमें से कुछ वकील भी थे। यहाँ वकीलों ही की बात कहूँगा। इनमें से कुछ ऐसे थे, जिनसे मेरी बड़ी बेतकल्बुफी थी। मुझसे दो-तीन साल पहले के वकालत पास भी थे। मान लीजिए कि उनमें से एक का नाम 'क' दूसरे का नाम 'ख' और तीसरे का नाम 'ग' था।

मिस्टर 'क' से सुबह भेंट हुई थी, बड़े परेशान थे। वकालत बिल्कुल न चलती थी। कहने लगे—“यार, क्या करूँ, नौकर की फ़िक्र में हूँ।”

मैंने कहा—“फिर ?”

बोले—“कोई नौकरी भी नहीं मिलती।”

मेरी हालत पूछी, तो मैंने साफ़ कह दिया —“मुझे तो भई जब तक पिता जी रुपये दिये जायँगे, मैं बराबर वकालत करता जाऊँगा।”

इसी प्रकार 'ख' महाशय से भी एक साहब के यहाँ भेंट हुई। उनका भी पतला हाल था, बल्कि उनकी जेब से “वांटेड” (आवश्यकता है के विज्ञापन) की गड्डी की गड्डी निकली। चूँकि मेरे गहरे मित्र थे, दो-तीन उसमें से छूटकर मुझे भी विज्ञापन दिये और अज़ी के बारे में ताकीद की कि रजिस्ट्री से भेजना। आज तक तो उन

अर्जियों में से एक का जवाब भी नहीं आया और ख्वाहमख्वाह रजिस्ट्री में मेरे दाम गये ।

‘ग’ महाशय से भी भेंट हुई । उनका भी यही हाल था । मेरी इन तीनों मित्रों से घनिष्टता थी, अतः किसी ने भी मुझे असली हाल बताने में संकोच न किया ।

...

...

...

शाम को भोज के दिलचस्प जलसे में पहुँचे । मेरी तरह के बहुत से वकील अपने-अपने बापों की कमाई से बनवाये हुए कीमती सूट पहिने हुए केक और फल भाड़ रहे थे । एक उम्र के, एक विचार के और एक पेशे के लोग जब इकट्ठे हुए, तो यही सवाल पेश हो गया कि ‘कहो भई, कैसी चलती है ?’ मैं नहीं कह सकता कि यह सवाल कितना टेढ़ा है । आपको पहिचान बताता हूँ कि नया वकील इस सवाल का जवाब देने से पहले अगर ज़रा भी खाँसे या इधर-उधर देखे, तो जो आमदनी वह आपको बताये, उसको बेधड़क दस से भाग दे दे, बिलकुल सही जवाब निकल आयगा । नये वकील इस सवाल से इतना घबराते हैं कि यदि वह ससुराल जाते हों, तो सिर्फ़ इस सवाल से बचने के लिए भूमिका के रूप में यही कह देते हैं कि जनाब, एक मुकदमे की पैरवी में जा रहा हूँ ।

अतएव यही सवाल कि “कैसी चलती है ?” पेश हो गया और मिस्टर ‘क’ को जवाब देना पड़ा । मिस्टर ‘क’ ने चेहरे पर चमक पैदा करके कहा—“खुदा का शुक है, अच्छा काम चल रहा है ।”

“कितना औसत पड़ जाता है ?” मिस्टर ‘ख’ ने पूछा ।

मिस्टर ‘क’ ने जरा गला साफ़ करके, खाँसते हुए कहा—“क्या औसत पड़ता है... भई, बात तो यह है कि नया काम है, कुछ भरोसा नहीं, किसी महीने में कम, तो किसी में ज्यादा ।”

इतना कहकर कुछ खाने की ओर आकर्षित हुए, क्योंकि इस फ़र्ज से भी गाफिल नहीं रहना चाहते थे, और फिर कुछ समझकर खुद ही कहा—“एक महीने में तो ऐसा हुआ कि सिर्फ़ बत्तीस रुपये पौने नौ आने आये ?”

एक ठहाका लगा और साहब ने ज़ोर से कहा—“पौने नौ आने, न कम न ज्यादा !”

मिस्टर ‘क’ ने जल्दी से लोगों का इस तरह भ्रम-निवारण किया—
“एक महीने में तो समझिए कि साढ़े बत्तीस रुपये आये, लेकिन दूसरे महीने में सत्रह दिन के अन्दर दो सौ छयालिस ।”

मिस्टर ‘ग’ तथा अन्य सब लोगों ने गौर से मिस्टर ‘क’ के चेहरे को देखते हुए कहा—“तो औसत आपका दो सौ रुपये महीने का पड़ता होगा ?”

मिस्टर ‘क’ ने आँखें नीची किये हुए, नारङ्गी की फाँक खाते हुए कहा—“अजी मुश्किल से दो सौ से कम ही समझिये, बल्कि एक कम दो सौ कहिए ।” इस प्रकार इस सवाल से अपनी जान छुड़ा कर अब मिस्टर ‘ग’ को पकड़ा और कहा—“कहां यार, तुम्हारा क्या हाल है ?”

अब मिस्टर ‘ग’ की तरफ सब की आँखें उठ गईं—उनकी हालत दयनीय थी । उनको भी खाँसी आई और उनका औसत भी दो सौ, पौने दो सौ के लगभग पड़ा ।

मिस्टर ‘ख’ का नम्बर आया तो करीब उतना ही उनका भी हिसाब पड़ता था; पर चूँकि वह हिसाब रखने के आदी नहीं थे, अतः कुछ अधिक स्पष्ट उत्तर न दे सके । सब इस बारे में एकमत थे कि बकालत बहुत अच्छा और स्वतन्त्र पेशा है, अवश्य है, बशर्ते कि घर से बराबर रुपया आता रहे । साल दो साल में डेढ़-दो सौ रुपये

की आमदनी होने लगना इस बात का प्रमाण है कि दस-बारह वर्ष में काफ़ी आमदनी होने लगेगी, यानी हजार-बारह सौ की ।

मेरा नम्बर आया तो मैंने मिस्टर 'ख' के दिये हुए 'आवश्यकता है' के विज्ञापन निकाल कर दिखाए कि भई, मैं तो आजकल यह देग्य रहा हूँ । उपस्थित लोगो ने एक ठहाका लगाया और मैंने चुपके में मिस्टर 'ख' की ओर देखा । वह कुछ बेचैन से थे ।

मिस्टर 'क', 'ख' तथा मिस्टर 'ग' क्या, बल्कि 'ज', 'व', 'श' तक जितने भी वहाँ वकालत के पेशेवाले थे, उन्होंने विशेष दिलचस्पी दिखलाई और फिर मिस्टर 'क', 'ख' तथा 'ग' ने तो कहा—“अर्जी, जमे रहो । हम भी घबरा गये थे और तुम्हारी तरह कहते थे कि नौकरी कर लेंगे; परन्तु खबरदार, नौकरी का भूलकर भी नाम न लेना । वास्तव में यह बात ठीक भी थी । क्यों ? सिर्फ़ इसलिए कि वकालत बहुत सम्मानित तथा स्वतन्त्र पेशा है ।

[२]

इसी भोज में मेरे सीनियर भी मिले, कहने लगे—“सुबह आना, एक मामूली-सी मुंसिफ़ी की उजूदारी है । दस बजे की गाड़ी से चले जाना और शाम को आना ।”

यह ज़िले की एक तहसील की मुंसिफ़ी का मुक़दमा था । मुक़दमा या फ़ीस के बारे में, मैं कुछ न पूछ सका । मेरे सीनियर एक पुराने और सफल वकील हैं । लम्बे-चौड़े रोबदार आदमी, क़द की तरह आवज़ भी बड़ी रोबदार है । इस कारण बड़े वकीलों में उनका विशिष्ट स्थान है ।

×

×

×

चूँकि तहसीलों की मुंसिफ़ी में नये वकील को विशेष ठाट-बाट से जाना चाहिए, मैंने भी रात ही को एक बढ़िया-सा सूट निकालकर रक्खा । सुबह श्रीमती जी से कहा—चाय के बजाय अण्डे और परांठे

खिलवाओ।' एक किताब के ले जाने का भी निश्चय हुआ यद्यपि उसकी कोई आवश्यकता न थी।

मुझे तो अफसोस था ही, श्रीमती जी से कहा, उसको भी दुख हुआ, जब कि मैं अपने सीनियर के यहाँ से लौटा और सारा किस्सा सुनाते हुए जल्दी-जल्दी स्टेशन जाने की तैयारी की। बात दुख की यह थी कि मुवक्किल बीस रुपये दे गया था। सीनियर साहब स्वयं तो जजी की एक अपील के कारण न जा सकते थे, अतः उन्होंने मुझसे कहा कि वकालतनामा मौजूद है, इस पर तुम भी दस्तखत कर देना और दस रुपये तुम ले लेना और बाकी दस मुवक्किल को वापस कर देना। मैं भला, उनसे कैसे कहता कि जनाव, यह आप फ़िजूल क्यों वापस कर रहे हैं? मेरे और श्रीमतीजी के दिमाग तो देखिये, मैं सोच रहा था कि जो काम मेरे सीनियर करते, आखिर बिलकुल वही तां मैं भी करूँगा। वे स्वयं करते, तो बीस रुपये लेते, जो मुवक्किल दे ही गया था, और मुझसे काम ले रहे हैं, तो आया हुआ रुपया वापस कर रहे हैं! यह सब कुछ था, पर मुझे रुपये वापस करना ही थे। फीस के अतिरिक्त किराया आदि अलग मिला था। मामले को सीनियर साहब से खूब समझ कर आया था। और फिर मामला भी तो कुछ होता। जरा सोचिए तो कि काम ही क्या था? बात केवल इतनी थी कि दो भाई थे। एक ने कर्जा लिया। महाजन कुर्की कराने आया, कर्जदार भाई के पास कुछ न मिला, तो उसने दूसरे भाई के बैल ज़बरदस्ती नीलाम करा लिए। अगर मामले को देखा जाय, तो वास्तव में इस मामले में किसी वकील की आवश्यकता न थी—कहाँ एक बड़े वकील की? क्योंकि कोऑपरेटिव बैंक के रजिस्टर मौजूद थे, और फिर पटवारी का खाका, जिससे साबित था कि दोनों भाइयों की खेती-बारी और सब कारबार अलग है, और एक भाई के कर्ज में दूसरे भाई के बैल किसी तरह नीलाम नहीं हो सकते।

इसकी भी पूरी गवाही मौजूद थी कि ये बैल बैंक के कर्जों से खरीदे गये हैं। इन सब बातों के होते हुए भी वकील बिलकुल न करने या मेरा-सा कोई थर्ड क्लास वकील कर लेने की जगह वह भलामानुस सीधा मेरे सीनियर के पास दौड़ा आया।

मैं आपसे क्या कहूँ कि सब नये वकीलों को (विशेष कर मुझे सबसे अधिक) कितनी बड़ी शिकायत है कि सभी मुकदमेबाज ज़रा-ज़रा से कामों के लिए ख्वाहमख्वाह बड़े वकीलों के पास दौड़ते हैं। हम लोगों को कोई मसख़रा भूलकर भी नहीं पूछता, नहीं तो इससे अच्छा काम आधी से भी कम फ़ीस पर दौड़ कर करें। पर साहब हमारी कोई भी नहीं सुनता। जिसे देखो, बड़े वकीलों के पास दौड़ा चला जा रहा है। हम भी जलकर कहते हैं कि जाओ, हमारी बला से ! एक छोड़ दस बार जाओ; दूने-चौगुने दाम भी दो और झिड़कियाँ खाओ अलग। अब आप ही बतायें कि इसके अतिरिक्त और भला, हम कर भी क्या सकते हैं ?

×

×

×

साढ़े दस बजे के करीब मैं मंजिले-मकसूद पर पहुँच गया। तुरंत मैंने अपने मुवक्किल की तलाश शुरू कर दी।

यह मुवक्किल वास्तव में मेरे सीनियर साहब का बहुत कायल और भक्त था। वह समझता था कि ख़राब से ख़राब मुकदमा भी वे ठीक कर सकते हैं और इसीलिए वह उनके पास दौड़ा आया था। मैंने उस दुष्ट को कभी न देखा था। इधर मैं उसे खोज रहा था, और उधर वह मेरे सीनियर की प्रतीक्षा कर रहा था। उसे क्या पता कि उनके बजाय मैं आया हूँ और स्वयं उसको ढूँढ़ता फिर रहा हूँ। पेशकार के पास जाकर मैंने वकालतनामा दाख़ल किया। अदालत के कमरे से निकला ही था कि एक ग़वार ने मुझे सलाम किया। इस तरह मानों मुझसे कुछ पूछना चाहता है। उसने मुझसे मेरे सीनियर

के बारे में पूछा कि वे क्यों नहीं आए ? मैंने इसके उत्तर में उसका नाम लेकर पूछा कि क्या यह तुम्हारा नाम है ? “हाँ ।” उसने कहा । मैं खुश हुआ कि मुक्किल मिल गया । मैंने कहा—“तुम्हारे मुकदमे में मैं आया हूँ, उनकी जजी में एक अपील है ।”

यह सुनकर उस दुष्ट के तो मानों प्राण सूख गये । बहुत ही खीझकर उस मूर्ख ने चार आदमियों के सामने ही कह दिया—
“उन्होंने मेरा मुकदमा पट कर दिया ।”

आप स्वयं सोचिए कि उस गँवार के ऊपर मुझे कितना क्रोध न आया होगा ? मैं बहुत लज्जित हुआ और मन में सोचा कि यदि ऐसे ही दो-चार और मिल गए, तो फिर मुंशीजी के कथनानुसार बकालत तो बस, चल चुकी ।

मैंने अपनी भेंट मिटाने को हँसी में बात टालनी चाही और कहा—“क्या फिजूल बकता है ।” मुझे खयाल आया कि उस बीच में दस रुपये अभी वापस कर दूँ ताकि यह खुश हो जाय । अतएव मैंने दस रुपये का नोट निकाल कर उसको दे दिया और कहा—
“बाकी दस मेरी फीस के हुए और ये तुम्हें वापस किए जाते हैं ।”

मेरा रुपया वापस करना मानो और भी सितम हो गया । मानो सारी कलाई खुल गई । उसने नोट तह करके अपना जेब में रखते हुए कहा—“मुझे दस पाँच रुपए का टूटा-फूटा बकौल करना होता, तां मैं यहीं न किसी को कर लेता; उनके पास क्यों जाता ?”

अब तो जनाब, मैं और भी घबराया । क्या बताऊँ, मुझे उस दुष्ट ने कितना भेंपाया और कैसा सबके सामने अपमानित किया । क्रोध के मारे मैं काँपने लगा । मुझे मालूम होता कि यह दुष्ट मुझे इस बुरी तरह भिगो-भिगो कर मारेगा, तां मैं सौ रुपए फीस पर भी उस गधे के मुकदमे में न आता । हाय, मैं क्यों यहाँ आया ! वश में नहीं था कि एकदम से उड़ कर यहाँ से किसी तरह गायब हो जाऊँ

और इसके इन व्यंग्य-वाणों से छुटकारा पाऊँ । मैं उलटा अदालत के कमरे में भागा, मानो कोई आवश्यक बात याद आ गई हो । मैं इस पेशे को मन ही मन बुरा-भला कह रहा था और बाहर इस बात पर लोग हँस रहे थे । मेरा ऐसा अपमान कभी नहीं हुआ था । और यह सब अपमान केवल दस रुपए की बदौलत ! धिक्कार है, इस पेशे पर !

जब मैंने देखा कि वह दुष्ट दूर चला गया, तो फिर बरामदे में निकला । दूर से एक पेड़ के नीचे मैंने उसको खड़ा देखा । दो-चार आदमी और थे । इतने में उस ज़ालिम ने मुझे देखा और देखते ही वहीं से मेरी तरफ उसने अँगुली उठाई ।

आपकी तरफ़ अगर कोई दुश्मन भरी हुई बन्दूक की नाल दिखाये, तो आप क्या करेंगे ? अवश्य ही आड़ में छिप जायेंगे ।

बस, तो फिर मैंने भी यही किया और तुरन्त अदालत के कमरे में घुस गया; क्योंकि मनहूस अँगुली मेरे लिए किसी तरह भी बन्दूक की नाल से कम नहीं थी । थोड़ी देर बाद निकला तो फिर उसने मेरी ओर अँगुली उठाई । अब मुझसे सहन न हो सका । मैं सीधा उसकी ओर गया । क्रोध के मारे मेरा बुरा हाल था । पहुँचते ही उसने मेरा रुख बिगड़ा हुआ देखा, तो कुछ झिझका और मैंने डपट कर कहा—“चुप रह, बदतमीज़ कहीं का ! एक तो हम इतनी दूर से आये, आधी फ़ीस ली और उस पर से तू बदज़बानी करता है ।”

दो-एक अरायज़नवीसों ने भी मेरी हिमायत की और उसको डाँटा तथा मेरी योग्यता पर कुछ प्रकाश डाला और उसे कायल किया । वह तुरन्त सीधा हो गया और माफ़ी माँगने लगा, क्योंकि आखिर तो उसे मुझसे ही काम लेना था । जब वह ठीक हो गया, तो मैंने उससे कुछ ज़बानी बातें भी पूछी । पटवारी से भी बातचीत की । बैंक के मुन्शी से भी मिल लिया और सबको आवश्यक हिदायत भी कर दी ।

थोड़ी ही देर के बाद मुकदमे की पेशी हुई। मैं कभी उस पेशी को न भूँगा।

...

...

...

इधर से मैं वकील था और उधर से एक मोटे-ताज़े बड़ी-बड़ी मूँछोंवाले, काले भुजङ्ग वकील थे, जिनकी घाँटी इतनी साफ़ थी और वह तेज़ी से बोलते कि जन पड़ता था, मानो कोई चने दल रहा है। उधर यह मामला, और उधर मैं सूखा-साखा पतले शरीर का, ऐसा कि उनमें से जैसे दस बनते। गुल-गपाड़ा वैसे तो मैं भी मचा सकता हूँ, फिर भी जनाब, कहाँ ढपली और कहाँ ढोल ? इसके अतिरिक्त मुझमें और उनमें सबसे बड़ा एक और फ़र्क़ था। वह फ़र्क़ जो आमतौर से हाईकोर्ट और तहसील के वकीलों में हो सकता है।

जब मुकदमा पेश हुआ, तो मैंने कुछ बनकर बड़ी ही तमीज़ और कायदे से अपने मुवक्किल की उजूदारी पेश की। पर खुदा वकीलों की बदतमीज़ी से बचाए ! विपत्ती वकील बार-बार कायदे के खिलाफ़ हस्तक्षेप करते थे; अकारण और बिना किसी बात के मेरे ऊपर कायदे के खिलाफ़ एतराज करते थे। कई बार मैंने अदालत का ध्यान भी इस ओर आकर्षित किया कि इनका कोई अधिकार नहीं, और अदालत ने कहा भी, पर वह भला काहे को सुनते ? उनको न तो अदालत की फ़िड़कियों का डर था और न इसका खयाल था कि यह बात कायदे के खिलाफ़ है कि मेरे भाषण के बीच में दखल दें। उन्हें तो बस, एक खयाल था और वह यह कि मुकदमा तो हारना ही है; लाओ, अपने मुवक्किल ही को खुश कर लूँ, ताकि वह कायल हो जाय कि मेरे वकील ने कोई क़सर नहीं उठा रखी। गरज़, वह मुर्गों की-सी चोंचें लड़ा रहे थे। कभी मिसिल सामने से लिए लेते थे, तो कभी फाँद-फाँद कर मुझे रोक देते थे।

जिस तरह भी बन पड़ा, मैंने अपना भाषण बड़ी ही सफलता

से समाप्त किया और अब उनका नम्बर आया । उन्होंने अपनी मूँछें पाँछ कर, ज़रा गला साफ़ किया, यानी दूसरे शब्दों में उन्होंने कहा—‘अब जिगर थाम के बैठो, मेरी बारी आई ।’

उन्होंने अपनी ज़बानी भाषण शुरू किया, आँखें घुमा कर और माथे पर बल डाल कर रेलगाड़ी-सी छोड़ दी । जो मुँह में आया, वह ठीक या बेठीक सब कह डाला, और फिर इस भाषण के बीच में उनका गरदन को झटका देकर एक विचित्र ढङ्ग से आगे को बढ़ना और फिर गरदन हिलाते आँखें मटकाते हुए और हाथ नचाते हुए पीछे को हटना और फिर झपट कर मिसिल को लेना और तेज़ी से वरक को उलट-पलट करके उसके वरक उड़ाना, यह सब एक तमाशा था । यदि मिस्टर अलिस्टन या जस्टिस महमूद या रासबिहारी घोष होते तब भी इस मुकदमे में मेरे खिलाफ़ उनकी बोलने की हिम्मत न पड़ती, क्योंकि मुकदमा ही उस तरफ़ से कमजोर था । पर वह महा-शय भला, काहे को रुकते ? उनके इस बेतुके और वार्थ के भाषण से मेरे ऊपर या अदालत के ऊपर तो कोई असर नहीं पड़ सकता था; पर दुर्भाग्य से मेरे मुवक्किल के होश उड़ गए । वह मुर्ख बहुत घबड़ाया और यह समझा कि विपक्षी वकील चूँकि बड़े जोर शोर-से मुकदमा लड़ रहा है, अतः मेरी सुस्ती से कहीं जीत न जाए । अतः उसने मेरे कान में चुपके से अपनी आशंका प्रकट करते हुए मुझसे कहा कि तुम क्यों नहीं लड़ते । मैंने उसकी इस बदतमीज़ी का कोई जवाब न दिया । मुझे क्या पता था कि इसका परिणाम मेरे लिए बुरा होगा, नहीं तो शायद विपक्षी वकील से लिपट ही पड़ता ।

लेकिन मेरे मुवक्किल ने मुझसे फिर कहा और जब कई बार मुझे तंग किया, तो मैंने उसे झिड़क दिया कि चुप रह ।

अब मेरी मुसीबत आती है । थोड़ी ही देर बाद जब विपक्षी वकील का धुआँधार भाषण फिर ज़ोरों पर आया, तो मेरे मुवक्किल

ने एक नई तरकीब निकाली । “हजूर” कह कर हाथ जोड़ कर मुंसिफ़ साहब के सामने खड़ा हो गया ।

मुंसिफ़ साहब ने विपक्षी वकील को रोका और मेरे मुवक्किल से कहा—“क्या ?” और मेरी आँर देखकर कहा—“कहिए, यह क्या कहता है ?”

• मुझसे उन्होंने इस कारण पूछा कि साधारणतया मुवक्किल प्रत्येक बात अदालत से अपने वकील के द्वारा कहता है । मैंने अज्ञान प्रकट किया और मुवक्किल से कहा कि जो कुछ कहना हो, मुझसे कहो, मेरी आँर मुवक्किल ने भन्ना कर देखा और कहा—“आपसे नहीं कहना है, मुझे तो हुजूर से कहना है । अर्थात् मुंसिफ़ साहब से ।”

मुंसिफ़ साहब ने उससे कहा—“बोल, क्या कहना है ?”

हाथ जोड़े तो वह खड़ा ही था; अब गिड़गिड़ाकर कहने लगा—
“हुजूर, मेरे मुक़दमे की पेशी की कोई दूसरी तारीख बाँध दीजिए ।”

और इसके पहले कि मुंसिफ़ साहब कुछ बोलें, उसने तीन-चार बार फ़रियाद की—“हुजूर, मेरी पेशी बढ़ा दी जाय । हुजूर, मैं मर जाऊँगा; तबाह हो जाऊँगा ।”

अब मैं कुछ खटका और घबराया ।

कायदा है कि बिना किसी कारण के मुक़दमा स्थगित नहीं होता, अतः मुंसिफ़ साहब ने कारण पूछा । इस पर यह दुष्ट बोला—
“साहब, मैं बेमौत मर गया । अब क्या कहूँ, क्या कारण बताऊँ ? बस, कुछ न पूछिए, मेरे तो करम फूट गये ।”

जब उसने बार-बार पूछने पर भी कुछ न बताया तो मुंसिफ़ साहब ने डपट कर कहा—“बताना हो तो बताओ, नहीं तो अदालत से बाहर निकलवा दूँगा ।”

इस पर वह दुष्ट बोला, और बड़े ही बुरे स्वर में बोला—“हजूर, मेरी किस्मत इस तरह फूट गई कि इस मुक़दमे में बड़े वकील साहब

को बुलाया था; पर मेरे करम जो फूटे, तो उन्होंने इनको भेज दिया ।” यह कह कर उसने मेरी तरफ अँगुली उठाई और मेरा चेहरा फक हो गया, हाथ-पैर फूल गये और दिल धड़कने लगा । जाड़ों के दिन थे, परन्तु पसीना आ गया । गरज, मेरी तरफ अँगुली उठा कर उसने उसी आपत्तिजनक स्वर में कहना शुरू किया—“उन्होंने इन्हें भेज दिया और हुजूर इनका यह हाल है कि इनका चिरकुव (एक बहुत छोटे पक्षी) का सा सीना, न बहस, न अहस ।”

इस पर ज़ोरदार ठहाका लगा । पर मुंसिफ साहब ने डाँट कर कहा—“क्या बकता है, बाहियात, नालायक कहीं का !” पर हँसी के मारे सबका बुरा हाल था । इधर मेरा यह हाल कि भेंपने की हँसी हँसने की चेष्टा की । उससे भी काम न चला तो जँभाई ली, मुँह रुमाल से पोंछा, घड़ी की तरफ देखा, कलम के निब से कुछ मेज़ कुरेदी और वह धूत्त गिड़गिड़ाकर कहता रहा—“हुजूर, मेरी पेशा बढ़ा दी जाए, मेरे ऊपर दया कीजिये, मैं मर जाऊँगा ।”

मुंसिफ साहब ने स्वयं हँसी को रोका और गम्भीर होकर विपक्षा वकील से कहा—“आपको तो कोई एतराज़ नहीं है ?”

उन्होंने कहा—“मुझे कोई एतराज़ नहीं, बशर्ते कि विपक्षी दल मेरा हरजाना जमा कर दे ।”

यह सुनते ही मेरे मुवक्किल ने वही दस रुपये का नोट, जो मैंने उसे वापस किया था, अदालत की मेज़ पर रख दिया । विपक्षी वकील ने तुरन्त उसको उठा कर अपनी जेब में रक्खा । अब उसने यानी मेरे मुवक्किल ने इतमीनान से विपक्षी वकील की ओर भी टेढ़ी नज़रों से देखा और कहा—“टें टे कर लो, अबकी बार जो मेरा वकील आयगा, तो तुम्हें भी बन्द कर देगा ।”

मुंसिफ साहब ने फिर डपट कर कहा—“इसे निकालो, अदालत से निकालो ।”

वह दुष्ट हाथ जोड़ता, सलाम करता, मु.सिफ साहब की जजी को दुआएँ देता, सिर पर पाँव रख कर भागा। मैं आपसे क्या बताऊँ कि मेरा क्या हाल था ? हर आदमी मुझे देख कर मुस्करा रहा था और मैं मरा जा रहा था। बस न चलता था कि ज़मीन में सम जाऊँ। चलते समय मु.सिफ साहब ने भी एक छींटा कसा और मुझसे कहा—“बकाल साहब, कुछ दण्ड लगाइये ताकि सीना कुछ चौड़ा हो जाए।”

गरज जिस प्रकार बन पड़ा, सीधा अदालत के कमरे से निकल कर स्टेशन की तरफ भागा। वह दिन और आज का दिन; फिर कभी उस तहसील में जाने की हिम्मत न पड़ी। यही क्या कम है बकालत कर रहा हूँ ! वह शायद इसलिए कि बकालत बहुत बढ़िया और स्वतंत्र पेशा है !



